अवधी और उसका साहित्य

: अवधी-भाषा और साहित्य का परिचयात्मक विश्लेषण :

लेखक
डॉक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी-विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय

सम्पादक : क्षेमचन्द्र 'सुमन'

सरस्वती सहकार, दिल्ली
की ओर से प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक विकास में भारत की भाषाओं तथा उपभाषाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश का अधिकांश पठित जन-समुदाय अपनी प्रादेशिक और समृद्ध जनपदीय भाषाओं के साहित्य से सर्वथा अपरिचित है। कुछ दिन पूर्व हमने 'सरस्वती सहकार' संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक एक पुस्तक-माला के प्रकाशन की योजना बनाई और इसके अन्तर्गत भारत की लगभग २७ भाषाओं और समृद्ध उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देने वाली पुस्तकें प्रकाशित करने का पुनीत संकल्प किया। इस पुस्तक-माला का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को सभी भाषाओं की साहित्यिक गति-विधि से अवगत कराना है।

हर्ष का विषय है कि हमारी इस योजना का समस्त हिन्दी-जगत् ने उत्फुल्ल हृदय से स्वागत किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस पुस्तक-माला का एक मनका है। आशा है हिन्दी-जगत् हमारे इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगा। इस प्रसंग में हम पुस्तक के लेखक डॉक्टर त्रिलोकी-नारायण दीक्षित के हार्दिक आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से कुछ अमूल्य क्षण निकालकर हमारे इस पावन यज्ञ में सहयोग दिया है। राजकमल प्रकाशन के सञ्चालकों को भूल जाना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिनके सक्रिय सहयोग से हमारा यह स्वप्न साकार हो सका है।

जी. १० दिलशाद गार्डन,
शाहदरा (दिल्ली)

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

श्रद्धेय अग्रज
पं० राजाराम दीक्षित,
एम० ए०, एल-एल० बी०
को
सादर एवं सप्रेम

प्रस्तावना

अवधी का स्थान जनपदीय बोलियों में विशेष महत्त्वपूर्ण है। अवधी के लिए यह गर्व की बात है कि उसको तुलसीदास और जायसी-जैसे महाकवियों ने अपनी हृदयानुभूति को जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनाया। इस परम्परा में अनेक कवियों का आविर्भाव हुआ, जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं उसमान, आलम, नूरमुहम्मद, शेख निसार, कासिमशाह, ख्वाजा अहमद, कवि नसीर, दुखहरनदास, मलूकदास तथा मथुरादास। इन कवियों ने अवधी के माध्यम द्वारा ही अपनी वाणी को मुखरित किया था। अवधी का साहित्य प्रचुर अंश में आज भी अप्रकाशित पड़ा हुआ है। अवधी के केन्द्र बैसवाड़े में किसी समय अनेक रजवाड़े थे। इन रजवाड़ों में आज भी हस्तलिखित प्रतियों के साथ कवियों की प्रतिभा विनष्ट होती जा रही है। अवधी-काव्य-धारा आज भी तीव्र गति से साहित्य-क्षेत्र में प्रवहवान है। इसी अवधी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस ग्रन्थ में देने का प्रयास किया गया है।

इस पुस्तक के निर्माण में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उनकी सूची इसमें दे दी गई है। इसके अतिरिक्त ऑल इण्डिया रेडियो लखनऊ के 'ग्राम-पंचायत-विभाग' के श्री राम-उजागर दुबे तथा श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी तथा श्री वर्मा जी से पर्याप्त सहायता मिली। डॉ० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्० (प्रयाग-विश्वविद्यालय) से भी मुझे समय-समय पर

सुझाव मिले। लेखक इन सबके प्रति कृतज्ञ है। इसे पाठकों तक पहुँचाने का समस्त श्रेय श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को है; परन्तु वे इतने अभिन्न हैं कि उन्हें धन्यवाद कैसे दूँ ?

मौरावाँ (उन्नाव) त्रिलोकीनारायण दीक्षित

विजया दशमी, १६५४

क्रम

सहायक पुस्तकें

१. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया	सर जार्ज ग्रियर्सन
२. इवोल्यूशन ऑव अवधी	डॉ० बाबूराम सक्सेना
३. बुद्ध-चरित्र	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	श्री नामवरसिंह
५. हिन्दी के हिन्दू-प्रेमाख्यान	डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव
६. तुलसी की भाषा	डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
८. आधुनिक काव्य-धारा	डॉ० केसरीनारायण शुक्ल
९. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि	डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल
१०. निराला	डॉ० रामविलास शर्मा
११. जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२. संत-वाणी-संग्रह	वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
१३. अध्ययन	डॉ० भगीरथ मिश्र
१४. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन	डॉ० रामकुमार वर्मा
१५. सूफी काव्य-संग्रह	श्री परशुराम चतुर्वेदी

: १ :

अवधी भाषा

जन्म और विकास

'अवधी' का अर्थ होता है अवध का अथवा अवध-विषयक। परन्तु साहित्य के क्षेत्र या भाषा के क्षेत्र में जब 'अवधी' शब्द का प्रयोग होता है, तब इस शब्द का अर्थ होता है 'अवध-प्रदेश के अन्तर्गत बोली जाने वाली बोली या विभाषा।' अवध भारतवर्ष के उत्तराखण्ड का एक प्रमुख प्रदेश है। इतिहास के पृष्ठों में अवध के वैभव, विगत ऐश्वर्य और राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का सविस्तर वर्णन किया गया है। त्रेता, द्वापर, सतयुग और वर्तमान युग में भी अवध का अपना महत्त्व रहा है। रघु-वंश के आविर्भाव के साथ ही अवध के भाग्य-नक्षत्र और अधिक चमक उठे हैं। 'अवध' शब्द का अर्थ अयोध्या है। भारतीय इतिहास और संस्कृति में अयोध्या, अयोध्या राज्य, राज्य-वंश और उसके योगदान का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यवनों के राज्य-काल में भी यह अवध शक्ति-सम्पन्न राज्य था। अंग्रेजी राज्य-काल में साहित्यिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से अवध का अपना महत्त्व रहा है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामी जी ने 'अवध' शब्द का प्रयोग 'अयोध्या' के लिए किया था।[1] इसी प्रकार कवि लालदास गुप्त ने भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया था।[2]

---

१. 'बन्दौं अवधपुरी अति पावन'।

२. 'हिन्दी की प्रादेशिक बोलियाँ', पृष्ठ ६०।

अवधी का क्षेत्र

हिन्दी की प्रादेशिक बोलियों में अवधी का प्रमुख स्थान रहा है। हिन्दी के गौरव कवि तुलसी एवं मलिक मुहम्मद जायसी की प्रतिभाओं का विकास इसी प्रादेशिक बोली के माध्यम से हुआ है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख भाषा है। इस बोली का क्षेत्र यद्यपि अवध ही रहा है, परन्तु आज इसका प्रसार देश के कोने-कोने में पाया जाता है। हरदोई जिले के अतिरिक्त लगभग समस्त जनपदों और विशेष रूप से लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, बाराबंकी, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, फैजाबाद, लखीमपुर-खीरी आदि जिलों में यह भाषा बोली जाती है। बिहार प्रान्त के मुसलमान इसी बोली का प्रयोग करते हैं। मुजफ्फरपुर जिले तक यह बोली अपने मिले-जुले रूप में प्रयुक्त होती है। इस प्रदेश के अतिरिक्त दक्षिण में गंगा पार फतेहपुर, प्रयाग, मिर्जापुर, जौनपुर आदि जिलों की कतिपय तहसीलों में यह भाषा बोली और सुनी जाती है। इतना ही नहीं इस प्रदेश से बड़े-बड़े शहरों दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि में जाकर बस जाने वाले लोग अवधी का ही प्रयोग करते हैं। 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया' में सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'पूरबी हिन्दी' बोलने वालों की संख्या इस प्रकार दी है :

क. अवधी बोलने वालों की संख्या १६,१४३,५४८
ख. बघेलखण्डी ४,६१२,७५६
ग. छत्तीसगढ़ी .... ३,७५५,६४३[1]

ग्रियर्सन महोदय ने 'पूरबी हिन्दी' के अन्तर्गत तीन बोलियों का अस्तित्व माना है। ये बोलियाँ हैं—१. अवधी, २. बघेली, ३. छत्तीसगढ़ी। ये तीनों बोलियाँ भारतवर्ष के अवध, आगरा, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, नागपुर (छोटा) एवं मध्य प्रदेश आदि भू-भागों में प्रयुक्त और व्यवहृत होती हैं। केलॉग महोदय ने अपने व्याकरण में बघेली को रीवाँई का दूसरा

---

१. आज यह संख्या कई गुनी अधिक है।

रूप माना है और उसे अवधी के अत्यधिक निकट माना है।[1] वैसे भी इन दो बोलियों में अन्तर बहुत नाम-मात्र के लिए है। हाँ, छत्तीसगढ़ी और अवधी में पर्याप्त अन्तर है, कारण कि छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने 'इवोल्यूशन ऑव अवधी' में अवधी भाषा की परिधि या भाषा की सीमा निम्न लिखित रूप से निर्धारित की है :

१. उत्तर में .... नेपाल की भाषाएँ।
२. पूर्व में .... भोजपुरी
३. दक्षिण में .... मराठी
४. पश्चिम में .... पछाँही हिन्दी। कन्नौजी एवं बुन्देलखण्डी।[2]

अवधी की उत्पत्ति

अवधी की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मत-वैषम्य है। आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार अवधी का उद्गम-स्थल नागर अपभ्रंश भाषा है। शुक्लजी का कथन है कि "**अपभ्रंश या प्राकृत-काल की काव्य-भाषा के उदाहरणों में आजकल की भिन्न-भिन्न बोलियों के मुख्य-मुख्य रूपों के बीज या अंकुर दिखा दिये गए हैं। इनमें से व्रज और अवधी के भेदों पर कुछ विचार करना आवश्यक है, क्योंकि हिन्दी-काव्य में इन्हीं दोनों**

---

१. Linguistically, Bagheli does not differ from Awadhi. In the 'Linguistic Survey' 'its separate existence has only been recognized in deference to popular prejudice' (Linguistic survey of India Vol. VI p. 1). The Two characteristic points of difference mentioned in Survey (VI p. 20) viz 'the enclitic "te" or "tir" and the h form of the 1st. person future' are found in other dilects of Awadhi as well.

—'Evolution of Awadhi', by Dr. Babu Ram Saxena. Page 3.

२. 'Evolution of Awadhi', Dr. Saxena p. 2.

का व्यवहार हुआ है।"[१]

श्री नामवरसिंह का मत आचार्य शुक्ल जी से भिन्न है। उनका मत है कि "व्रजभाषा का प्रारम्भिक इतिहास शौरसेनी-अपभ्रंश से सम्बद्ध किया जा सकता है, परन्तु अवधी के किसी साहित्यिक अपभ्रंश का पता नहीं चलता।....अवध प्रान्त शूरसेन और मगध के बीच में होने से दोनों क्षेत्रों की भाषा-सम्बन्धी विशेषताओं से युक्त समझा जाता है। वर्तमान भाषाओं के पूर्व शूरसेन में शौरसेनी अपभ्रंश, मगध में मागधी अपभ्रंश और इन दोनों के मध्य भाग में अर्ध-मागधी अपभ्रंश का प्रचलन रहा होगा। इसी अनुमान पर अर्ध-मागधी से अवधी के उद्गम का भी अनुमान किया जाता है।"[२]

ग्रियर्सन महोदय ने अवधी की उत्पत्ति भौगोलिक दृष्टि के आधार पर निश्चित करने का प्रयत्न किया है। उनका मत है कि अवधी का जन्म अर्ध-मागधी से हुआ था।[३] व्रजभाषा के मर्मज्ञ और सुकवि श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के मतानुसार अवधी शौरसेनी से विकसित हुई है और अवध-प्रदेश या कौशल-प्रान्त शौरसेनी के ही अन्तर्गत सम्मिलित है।[४] 'इवोल्यूशन ऑव अवधी' के लेखक डॉ० बाबूराम सक्सेना का अभिमत है कि अवधी अर्ध-मागधी से भाषागत विभिन्नताओं के कारण पर्याप्त दूर है, परन्तु पालि से उसका पर्याप्त साम्य और नैकट्य प्रतीत होता है।[५]

अब यहाँ इन अभिमतों की विवेचना अपेक्षित है। 'रत्नाकर' जी का मत भाषा-विज्ञान की दृष्टि से निराधार सिद्ध होता है। शौरसेनी व्रज भाषा

---

१. 'बुद्ध-चरित', (भूमिका), पृष्ठ १९।
२. 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६७।
३. 'Linguistic Survey of India', Vol. VI p. 2.
४. 'कोशोत्सव स्मारक ग्रन्थ', पृष्ठ ३८५–३८६।
५. Eastern Hindi has more affinity with Pali than with Jain Ardhamagadhi. But Pali represents a much earlier stage than Jain Ardhamagadhi.'
'Evolution of Awadhi'—p. 7.

का उद्गम-स्थल है, अवधी का नहीं। व्रजभाषा और अवधी के शब्द-समूह, व्याकरण और वाक्य-संगठन में बड़ा अन्तर है, अतः निश्चय ही दोनों का उद्गम एक ही भाषा से सम्भव नहीं है। अवधी पूरबी समूह की भाषा है और व्रज पछाँही समूह की। डॉक्टर बाबूराम सक्सेना का अभिमत अधिक स्पष्ट नहीं है। वे किसी विशेष निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। उनका यह अनुमान है कि अवधी जैन-अर्धमागधी से नहीं, वरन् उससे भी पूर्व किसी अर्धमागधी भाषा से उत्पन्न हुई थी। इस असमञ्जस में अस्पष्टता और संकोच स्पष्ट है। ग्रियर्सन महोदय का मत उनकी दृष्टि अति भौगोलिक होने के कारण अनुमान-मात्र है। वैज्ञानिक अध्ययन में अनुमान के लिए कोई अवकाश नहीं है। उन्होंने अर्धमागधी से उत्पन्न होने का उल्लेख तो कर दिया है, पर कोई तर्क नहीं उपस्थित किया है। हमारे दृष्टिकोण से इन सभी मतों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इस दृष्टि से सर्वाधिक प्रामाणिक है। आचार्य शुक्ल ने भाषा और व्याकरण के जिन-जिन प्रमाणों का उल्लेख किया है, वे सब तर्क-संगत प्रतीत होते हैं।

पूरबी हिन्दी की अपनी विशेषताएँ हैं, जो उसे पछाँही हिन्दी या अन्य बोलियों से पृथक् कर देती हैं। इस पूरबी हिन्दी के निम्न लिखित लक्षण उसके पृथक् अस्तित्व के निर्धारण में सहायक होते हैं—

सर्वप्रथम हैं उसके संज्ञा-रूप। उच्चारण की दृष्टि से पूरबी और पछाँही हिन्दी में यत्किञ्चित् अन्तर है अवश्य, परन्तु संज्ञा-रूपों में वह बिहारी का अनुकरण करती है। इतना ही नहीं, बिहारी और पूरबी हिन्दी के सर्वनाम-रूपों में भी पर्याप्त साम्य है। उदाहरण के लिए पछाँही हिन्दी में सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम प्रथम पुरुष 'मेरा' होता है और पूरबी हिन्दी में 'मोर' होता है। द्वितीय बात यह है कि पूरबी हिन्दी या अवधी की स्थिति क्रिया-रूपों में मध्यस्थ है। पछाँही हिन्दी में 'मारना' क्रिया-पद का भूतकाल 'मारा' है और बिहारी में 'मारिल'; पर पूरबी हिन्दी में 'मारिस' होता है। बिहारी के समान पूरबी हिन्दी में 'ल' नहीं जुड़ता है।

पूरबी हिन्दी (अवधी) के भी दो प्रचलित रूप है—प्रथम है पच्छिमी

अवधी और द्वितीय है पूरबी अवधी। अब इन दोनों भेदों का सीमा-निर्धारण और प्रदेश विचारणीय है। पूरबी अवधी का क्षेत्र अयोध्या और गोंडा है। इसे 'शुद्ध अवधी' कहा गया है। पच्छिमी अवधी का क्षेत्र लखनऊ से कन्नौज तक है। इसी क्षेत्र में रायबरेली, उन्नाव और लखनऊ का कुछ भाग भी आ जाता है, जहाँ बैसवारी बोली जाती है। बैसवारी इसी पश्चिमी अवधी का एक रूप है। यह अवधी से उत्पन्न होकर भी अपनी विशेषताएँ और पृथक् अस्तित्व रखती है। इटावा और कन्नौज में बोली जाने वाली पश्चिमी हिन्दी रूप और आकार में बहुत-कुछ ब्रजभाषा से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। इस अवधी भाषा में शब्दों के ओकारान्त रूप उपलब्ध हो जाते हैं, जो ब्रजभाषा से साम्य रखने का स्पष्ट प्रमाण है। निम्न लिखित तालिका से खड़ी बोली, पूरबी अवधी और पच्छिमी अवधी का अन्तर स्पष्ट हो जायगा। इस तालिका से तीन सर्वनामों के विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है—

संख्या	*भाषा*	*तीन सर्वनामों के रूप*			*एक वाक्य*
१.	खड़ी बोली	कौन	जो	वह	कौन जायगा
२.	पच्छिमी अवधी	को	जो	सो	को जैहै
३.	पूरबी अवधी	के	जे	से	के जाई

यह खड़ी बोली के 'कौन', 'को', और पच्छिमी अवधी के 'को', 'जो', 'सो' का रूप ब्रज भाषा में 'का', 'जा' तथा 'ता' अथवा 'काकर', 'जाकर' एवं 'ताकर' होगा। इसके अतिरिक्त पच्छिमी अवधी में क्रिया का साधारणतया 'न' अन्त रूप रहता है; उदाहरण के लिए 'धरन', 'करन' या 'जान' है। इस दृष्टि से ब्रज और खड़ी बोली से पश्चिमी अवधी का साम्य है। पूरबी अवधी की साधारण क्रिया का अन्त 'ब' से होता है; उदाहरणार्थ 'धरब', 'करब' 'जाब'। परन्तु पश्चिमी अवधी के कुछ क्षेत्र में भी 'ब' अन्त क्रिया का प्रयोग होता है; उदाहरणार्थ 'धरिबे', 'करिबे', 'जइबे', 'मरिबे', 'हँसिबे'। इस प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग उन्नाव, लखनऊ और रायबरेली प्रान्तों में अधिक होता है। पच्छिमी अवधी में प्रथम पुरुष

एक वचन भविष्यत् क्रिया के अन्त में होता है। उदाहरणार्थ 'जइहैं', 'करिहैं', 'सोचिहैं', 'मरिहैं'। परन्तु पूरबी अवधी में पहले अन्त में 'हि' होता है या 'जाइहि', 'करिहि', 'सोचिहि', 'मारिहि' आदि। क्रमशः यह 'हि' अब 'इ' में परिवर्तित हो गया है। उदाहरणार्थ 'जाई', 'करी', 'सोची', 'मारी' आदि।

आगे कारक-चिह्न या दूसरी क्रिया लगने पर खड़ी बोली और व्रज के समान पच्छिमी अवधी में नान्त रूप रहता है; जैसे 'आवनकाँ' (पुराना रूप 'आवनकहँ') 'करन माँ' (पु० 'करन महँ') 'आवन लाग' इत्यादि। पर पूरबी अवधी में कारक-चिह्न या दूसरी क्रिया संयुक्त होने पर साधारण क्रिया का रूप नहीं रहता, वर्तमान का तिङन्त रूप हो जाता है; जैसे 'आवे काँ', 'जाय माँ', 'करैं का', 'आवैं लाग'। करण के चिह्न के पहले पूरबी और पच्छिमी दोनों अवधी भूत कृदन्त का रूप धर लेती हैं; जैसे 'आए से', 'चले से', 'आए सन', 'दिए सन'। संयुक्त क्रिया के प्रयोग में तुलसीदास जी ने यह विलक्षणता की है कि एक वचन में तो पूरबी अवधी का रूप रखा है और बहु वचन में पच्छिमी अवधी का; जैसे—'कहइ लाग', 'कहन लागे'।

अब क्रियाओं के भूतकालिक रूप विचारणीय हैं। विशुद्ध अवधी में भूतकालिक क्रिया का आकारान्त रूप प्रायः सकर्मक उत्तम पुरुष बहु वचन में होता है और प्रायः अकर्मक पुरुष एक वचन में; यथा—'हम खावा', 'यह पावा', 'ऊ लावा'। परन्तु अवधी के साहित्यिक रूप में आकारान्त भूत-कालिक रूपों का पुरुष-भेद-विहीन प्रयोग मिलता है। सामान्यतया अवधी क्रिया का रूप कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार रहता है। अवधी में क्रियाओं का भूतकालिक अन्त 'वा' में होता है; यथा 'लावा', 'पावा', 'गावा'। इसके विपरीत खड़ी बोली में अन्त 'या' में होता है, यथा—'लाया', 'पाया', 'गाया'।

सामान्यतया पूरबी और पछाँही हिन्दी में निम्न लिखित विशिष्ट भेद उपलब्ध होते हैं—

१. 'अ' एवं 'आ' के स्थान पर अवधी बोली में 'इ' होती है और व्रज में 'य' होता है।

२. पछाँही हिन्दी में 'इ' और 'उ' के स्थान पर 'य' और 'व' होता है।

३. पछाँही हिन्दी से 'ऐ' और 'औ' संस्कृत-उच्चारण क्रमशः विलीन हो गए। अवधी में यह उच्चारण वर्तमान काल में भी उपलब्ध होता है।

४. अवधी में दो अथवा दो से अधिक वर्णों वाले शब्दों के आदि में 'इ' और 'उ' के अनन्तर 'आ' का उच्चारण प्रचलित है। परन्तु यह विशेषता पछाँही हिन्दी में दृष्टिगत नहीं होती। उदाहरणार्थ— सियार (अवधी) तथा प्यार (पछाँही हिन्दी)।

५. अवधी भाषा की प्रवृत्ति सामान्यतया लघ्वन्त की ओर है और इसके विरुद्ध खड़ी बोली तथा व्रज की दीर्घान्त के प्रति।

६. अवधी में साधारण क्रिया के रूप लघ्वन्त होते हैं, परन्तु पछाँही हिन्दी में नकारान्त। उदाहरणार्थ—अवधी में 'जाब', 'चलब', 'द्याब', 'ल्याब' होता है, परन्तु व्रज में 'जान', 'चलन', 'देन', 'लेन' आदि रूप होते हैं।

अवधी-व्याकरण का मुख्य अंग हैं उसके कारक-चिह्न। अवधी के कारक-चिह्न खड़ी बोली और व्रज से भिन्न हैं। निम्न लिखित तालिका से इन तीनों बोलियों के कारक-चिह्न स्पष्ट हो जाते हैं—

संख्या	*कारक*	*खड़ी बोली*	*व्रजभाषा*	*अवधी*
१.	कर्ता	....	....	कोई विशेष चिह्न नहीं है
२.	कर्म	को, लिए, खातिर, तईं	कौं, कूँ, कुँ	क, हि, हिं, कहँ, के, काँ
३.	करण	ने, द्वारा, से	ने	सन, से, सौं
४.	सम्प्रदान	को, लिए, खातिर, तईं	कौं, कूँ, कुँ	क, कहँ, के

५.	अपादान	से	सौं, सों, ते, तें	सन, से, तें, तहँ, तें
६.	सम्बन्ध	का, की, के	कौ, की, के	कर, केर, केरा, केरी, के, कै, केरि और केर
७.	अधिकरण	में, पर, तक	पै, लौं, परि, पर, मै	म, मा, महँ, मह, माँहि, माँहि माँझ, मुँह, मुहु, मँझारि, पै, परि, अपरि, पर, पर्यन्त लागि, लग

अवधी के अकारान्त पदों में कभी-कभी 'आ' का विलोप हो जाता है। इस 'आ' के विलोप के अनन्तर प्रायः 'वा' प्रत्यय लगा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी 'औना' भी जोड़ दिया जाता है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय शब्दों का उल्लेख किया जाता है—घोड़ा, घोड़, घोड़वा, घोड़ौना। छोटा, छोट, छोटवा, छोटौना। लाला, लालवा, ललौना।

अवधी के तीन रूप

डॉक्टर श्यामसुन्दरदास ने अवधी के अन्तर्गत तीन प्रमुख बोलियों अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी को मान्यता प्रदान की है। उनका कथन है कि **"अवधी के अन्तर्गत तीन मुख्य बोलियाँ है—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी और बघेली में कोई अन्तर नहीं है। बघेलखंड में वोले जाने के ही कारण वहाँ अवधी का नाम बघेली पड़ गया। छत्तीसगढ़ी या मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ा है और इस कारण वह अवधी से कुछ बातों में भिन्न हो गई है। हिन्दी-साहित्य में अवधी ने एक प्रधान स्थान ग्रहण कर लिया।"**

यह तो हुआ अवधी के अन्तर्गत उपलब्ध तीन बोलियों के विषय में डॉक्टर श्यामसुन्दरदास जी का कथन। परन्तु इन तीन बोलियों के अति-

रिक्त अवधी के भी तीन रूप हैं। इनमें से सर्वप्रथम है पूर्वी अवधी, द्वितीय है पश्चिमी अवधी, और तृतीय है बैसवाड़ी अवधी।

अवधी के इन तीन रूपों का क्षेत्र और व्याकरण-भेद भी विचारणीय समस्या है। सर्वप्रथम 'पूरबी अवधी' को लीजिये। 'पूरबी अवधी' गोंडा, अयोध्या, फैजाबाद एवं उसके समीपस्थ प्रदेश में बोली जाती है। भाषा-विज्ञान के आचार्यों ने इसे 'शुद्ध अवधी' माना है। 'पश्चिमी अवधी' के व्यवहार का क्षेत्र लखनऊ से कन्नौज तक माना जाता है। यह बोली ब्रज-भाषी-प्रदेश के निकट व्यवहृत होने के कारण ब्रजभाषा से कुछ अंशों में प्रभावित प्रतीत होती है। इसके अनन्तर अवधी का तीसरा रूप है 'बैसवाड़ी अवधी'। बैसवाड़ी के व्यवहार का क्षेत्र बैसवाड़ा माना जाता है। इसके विषय में आगे अधिक विचार करने के पूर्व बैसवाड़ा की सीमा के विषय में विचार कर लेना अपेक्षित है।

अवध के दक्षिण में गंगा और सई नदी के मध्य में जो विस्तृत भू-भाग पड़ता है वह तीन भौगोलिक क्षेत्रों में प्राचीन काल से विभाजित रहा है। इन तीनों में ऊपर का भाग बाँगर, मध्य का बनौधा और इसके अतिरिक्त भाग अरवर कहा जाता है। बाँगर और बनौधा के मध्यस्थ प्रदेश को ही बैसवाड़ा कहा गया है। बैसवाड़ा के उत्तर में उन्नाव का असोहा परगना और राय-बरेली जिले की महराजगंज तहसील है। पूर्व में (रायबरेली जिले की) सलोन तहसील, दक्षिण में गंगा और पश्चिम में (उन्नाव जिले के) हडहा और पर-सन्दन परगने हैं। इसका क्षेत्रफल १४५६ वर्ग-मील है। इस क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली को 'बैसवाड़ी' या 'बैसवारी' कहा गया है।

पूर्वी, पश्चिमी और बैसवाड़ी अवधी के भेद को स्पष्ट करने के लिए यहाँ तीनों के सर्वनामों के रूप दिये जाते हैं। इसके आधार पर तीनों का भेद और साम्य स्पष्ट हो जायगा :

संख्या	*खड़ी बोली*	*पच्छिमी अवधी*	*पूरबी अवधी*	*बैसवाड़ी अवधी*
१.	यह	यह	ई	यहु
२.	वह	वह	ऊ	वहु

३.	वह	सो	से, तौन, ते	वहु
४.	जो	जो	जे, जौन	जौनु
५.	कौन	को	के, कौन	कौनु

क्रिया के तीनों बोलियों में विविध रूप

संख्या	*खड़ी बोली*	*पश्चिमी अवधी*	*पूरबी अवधी*	*बैसवाड़ी अवधी*
१.	आना	आवन	आउब	अइबे
२.	जाना	जान	जाब	जइबे
३.	करना	करन	करब	करिबे
४.	रहना	रहन	रहब	रहिबे

पूरबी और पच्छिमी अवधी के बड़े सुन्दर रूप मलिक मुहम्मद जायसी और गोसाईं जी के काव्य में उपलब्ध होते हैं। 'मानस' और 'पद्मावत' इस प्रकार के उत्कृष्ट उदाहरणों से भरे पड़े हैं। इन दोनों ग्रन्थों में जहाँ एक ओर दोनों महाकवियों के भाषा-ज्ञान का हमें पता चलता है वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन समाज में प्रचलित अवधी भाषा के सुन्दर नमूने भी उपलब्ध होते हैं। उभय ग्रन्थ-रत्नों से अवधी के दोनों रूपों के कतिपय उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं :

१. *तेहिकर* बचन मानि बिस्वासा।
२. बन्धु बिलोकि *कहन* अस लागे।
३. लाग सो *कहइ* राम गुन गाथा।
४. लगे चरन *चाँपन* दोउ भाई।
५. *जेहि करि जेहि पर* सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू॥
६. *तेइ* सब लोक लोकपति जीते।
७. *जाकर* चित अहिगति सम भाई।
८. भयउ *सो* कुम्भकरन बल धामा।
९. जीवत हमहि कुँअरि को *बरई*।
१०. कोलाहल सुनि सीय *सकानी*।

११. चौथेपन *पायउँ* सुत चारी।
१२. विविध भाँति भोजन *करवावा*।
१३. *जेहि-जेहि* जोनि करम बस *भ्रमही*।
तहँ-तहँ ईस देउ यह हमही।
१४. सत्य *कहहि* कवि नारि सुभाऊ।
१५. जो *जहँ सुनइ धुनइ* सिर सोई।[1]

१. लागी सब मिलि *हेरइ*।
२. जो *जाकर* सो *ताकर* भयऊ।
३. *जेहि* कह अस पनिहारी से रानी केहि रूप।[2]

इन उद्धरणों में इटैलिक अंश विशेष ध्यान देने योग्य हैं। 'मानस' और 'पद्मावत' दोनों में ही पूरबी और पछाँही अवधी के सुन्दर और रोचक रूप उपलब्ध होते हैं। इनमें से 'तेहिकर', 'कहन', 'कहइ', 'चौंपन', 'जेहिकर', 'जेहिपर', 'तेहि', 'तेइ', 'जाकर', 'भयउ', 'बरई', 'सकानी', 'पायउँ', 'करवावा', 'जेहि-जेहि', 'भ्रमहिं', 'तहँ-तहँ', 'कहहि', 'जहँ सुनइ धुनई', 'हेरइ', 'जाकर', 'ताकर', 'जेहि' आदि शब्दों में अवधी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। इन शब्दों में अवधी के पूरबी और पच्छिमी स्वरूप के विविध रूप अभिव्यक्त हुए हैं। 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' में इस कोटि के शतशः उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं।

अवधी और व्रजभाषा में साम्य

खड़ी बोली में काल बताने वाले क्रिया पद ('है' को छोड़कर) भूत और वर्तमानवाची धातुज कृदन्त अर्थात् विशेषण ही हैं, इसीसे उनमें लिंग-भेद रहता है। जैसे 'आता है' = 'आता हुआ है' = सं० आयान् (आयान्त)। उपजता. है = उपजता हुआ है = प्राकृत-उपजन्त, = सं० उत्पद्यन्त, उत्पद्यन्।....पर व्रजभाषा और अवधी में वर्तमान और भविष्यत्

१. 'रामचरितमानस' से।
२. 'पद्मावत' से।

के तिङन्त रूप भी हैं। जिनमें लिंग-भेद नहीं है। ब्रज के वर्तमान में यह विशेषता है कि बोल-चाल की भाषा में तिङन्त प्रथम पुरुष क्रिया-पद के आगे पुरुष विधान के लिए 'है' 'हूँ' और 'हौ' जोड़ दिए जाते हैं।...
....अब ब्रज में ये क्रियाएँ 'होना' के रूप लगाकर बोली जाती हैं। जैसे 'चलै है', 'उपजै है', 'पढ़ै है', 'पढ़ौ हौ', 'पढ़ूँ हूँ'। इसी प्रकार मध्यम पुरुष 'पढ़ौ हौ' होगा। वर्तमान के तिङन्त रूप अवधी की बोल-चाल से अब उठ गए हैं, पर कविता में बराबर आए हैं उ०—(क) **"पंगु चढ़ै गिरिवर गहन"**, (ख) **"बिनु पद चलै सुनै बिनु काना"**। भविष्यत् के तिङन्त रूप अवधी और ब्रज दोनों में एक ही हैं; जैसे 'करिहै', 'चलिहै', 'होइहय' = प्रा० जैसे 'चलिस्सइ', 'होइस्सइ' = सं० 'करिष्यति', 'चलिष्यति', 'भविष्यति'।[1]

अपभ्रंश और अवधी के उच्चारण में बहुत-कुछ साम्य है। ब्रज-भाषा में 'इ' के स्थान पर 'य' हो जाता है, यथा–'बनयहै', 'करिहय', 'खयहय' के स्थान पर क्रमशः 'बनैहै', 'करिहै', 'खैहय' हो जाते हैं। इसी प्रकार 'य' के पूर्व 'आ' को लघु बनाकर उसका दोहरा रूप भी किया जाता है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय दिये जाते हैं :

१. अयहै = ऐहै	४. खयहै = खैहै
१. जयहै = जैहै	५. करयहै = करैहै
३. सयहै = सैहै	६. सोयहै = सोहै

इसी प्रकार उत्तम पुरुष में 'य' के पूर्व 'आ' को लघु बनाकर उसको दोहरे रूप में परिवर्तित किया जाता है। यथा—

खयहौं = खैहौं
अयहौं = ऐहौं
जयहौं = जैहौं

अवधी में बहु वचन का कारक-चिह्न-ग्राही रूप नहीं होता। उदाहरणार्थ 'धोवन को', 'छोड़न को', 'छोरन को', 'धावन को' आदि। ब्रज-

---

1. 'बुद्ध चरित', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २३-२४।

भाषा में बहु वचन का कारक-चिह्न-ग्राही रूप नहीं होता, और खड़ी बोली में यह रूप 'ओ' होता है। उदाहरण—'लड़कों को'।

पुरानी हिन्दी में सम्बन्ध की 'हि' विभक्ति प्रायः सभी कारकों का अभाव पूर्ण करती है। मागधी में यह काम 'ह' और अपभ्रंश में 'हो' के द्वारा पूर्ण होता है। खड़ी बोली में कारक-चिह्न विभक्तियों से सदैव अलग माने जाते हैं। ब्रजभाषा में 'हि' का प्रयोग अब नहीं होता। ब्रजभाषा में 'काहिको', 'जाहिको', 'ताहिको' के स्थान पर क्रमशः 'काको', 'जाको', एवं 'ताको' का प्रयोग होता है। परन्तु अवधी में सर्वनाम में कारक-चिह्न लगाने के पूर्व अब तक 'हि' का प्रयोग होता है। उदाहरण—'केहिका', 'तेहिका', 'मोहिका' आदि।

अवधी खड़ी बोली और ब्रजभाषा में व्यक्तिवाचक सर्वनाम कारक-चिह्नों के पूर्व कुछ विकृत हो जाते हैं। इस विकार की दृष्टि से अवधी और ब्रजभाषा में कुछ साम्य भी है, परन्तु खड़ी बोली में जो परिवर्तन होता है वह इन दोनों बोलियों से भिन्न प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए निम्न-लिखित तालिका पठनीय होगी—

खड़ी बोली	*अवधी*	*ब्रज*
मैं, तू, वह	मैं, तै, वह, सो, ऊ	मैं, तू या तैं, वह, सो
मुझ, तुझ, उस	मों, तो, वा, ता, ओ	मों, तो, वा, ता।

अवधी में भूतकाल के गवा (जाना), भवा (होना) आदि में 'व' विलीन होकर 'गा' और 'भा' हो जाता है। इसी प्रकार ब्रजभाषा में 'गयो' और 'भयो' का 'यो' विलीन होकर 'गो' तथा 'भो' हो जाता है।

खड़ी बोली में प्रयुक्त करण का चिह्न 'से' ब्रजभाषा और अवधी में प्रायः भूतकालिक कृदन्त में ही प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ 'दिये तें', 'किये तें', 'हँसे तें' अवधी में क्रमशः 'दिये सन', 'किये सन', 'हँसे सन' हो जाते हैं।

अवधी में क्रिया का वर्तमान कृदन्त रूप सामान्यतया लव्वन्त होता है।

यथा–'जात', 'रहत', 'सहत', 'मरत' आदि। परन्तु व्रजभाषा का यह क्रिया-रूप कभी दीर्घान्त (खड़ी बोली के सदृश) होता है; यथा–'आवतो', 'जावतो', 'हँसतो', 'रहतो', 'सहतो' और कभी अवधी के समान लघ्वन्त भी; यथा–'आवत', 'भावत', 'सुहात' आदि

पूरबी अवधी में साधारण क्रिया पद का अन्त 'ब' से होता है। यथा–'जाब', 'हँसब', 'रहब', 'देब', 'लेब' आदि। पूरबी अवधी में इस 'ब' का प्रयोग भविष्यत् काल के लिए होता है।

व्रजभाषा और अवधी में भिन्नता

अवधी में भूतकाल की सकर्मक क्रिया के कर्त्ता के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग नहीं होता। परन्तु व्रजभाषा में ऐसा प्रयोग प्रचलित है (यद्यपि सूरदास-जैसे महाकवियों ने इसका प्रयोग नहीं किया)। अवधी में शब्द को एक वचन से बहु वचन में परिवर्तित करने के लिए कारक-चिह्न का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु व्रजभाषा में एक वचन का बहु वचन सभी अवस्थाओं में हो जाता है। अवधी में 'इकार' की प्रधानता रहती है और व्रजभाषा में 'यकार' की बहुलता। अवधी में भविष्य-काल-क्रिया का तिङन्त रूप ही बनता है, उदाहरणार्थ–'रहिहइ', 'जइहइ', 'सोइहइ' आदि। परन्तु व्रजभाषा की भविष्य-काल की क्रिया केवल तिङन्त नहीं हो तो उसमें 'ग' का प्रयोग भी होता है; यथा–'रहैगो', 'जायगो', 'सोवैगो'। अवधी का 'उ' व्रजभाषा में 'व' का रूप धारण कर लेता है, यथा–'उहाँ' का 'वहाँ' तथा 'हुआ' का 'ह्वाँ' हो जाता है। खड़ी बोली की आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाएँ व्रजभाषा में ओकारान्त रूप ग्रहण कर लेती हैं, यथा–'मेरो', 'थोरो', 'मोरो', 'गोरो', 'कैसो', 'तैसो', 'जैसो', 'साँवरो' आदि। परन्तु अवधी में ये शब्द लघ्वन्त या अकारान्त होते हैं, यथा–'कस', 'जस', 'तस', 'छोट', 'बड़', 'थोड़', 'हमार', 'तोहार'। व्रजभाषा में अवधी के शब्दों के आदि वर्ण का 'इकार' लुप्त होकर वह हलन्त हो जाता है और परवर्ण में मिल जाता है; उदाहरणार्थ-अवधी का सियार व्रजभाषा में स्यार, पियार-प्यार, वियाज व्याज, बियाह-ब्याह बन जाते हैं। अवधी में 'उ' के

पश्चात् 'आ' का उच्चारण प्रचलित और सुविधाजनक भी हैं, परन्तु व्रजभाषा में ऐसा नहीं है। अवधी के 'दुआर', 'कुआर' शब्द व्रजभाषा में 'द्वार', 'क्वार' हो जाते हैं। अवधी में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' और 'औ' का उच्चारण 'अउ' हो जाता है; यथा–'अइसा', 'कउआ' आदि। परन्तु व्रजभाषा में इनका उच्चारण 'ऐ' और 'औ' के समान ही होता है; जैसे–'कौआ, 'हौआ' 'ऐसा' आदि। अवधी के सर्वनाम में 'हि' कारक-चिह्न लगाया जाता है, परन्तु व्रजभाषा में इस चिह्न का प्रयोग नहीं होता। यथा–अवधी के 'केहिकर', 'जेहिकर' व्रजभाषा में 'केकर' तथा 'जेकर' बन जाते हैं।

इस प्रकार अवधी और व्रजभाषा में व्याकरण की दृष्टि से कुछ भेद प्रदर्शित किया गया हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य स्थूल भेद व्यावहारिकता की दृष्टि से उपलब्ध होते हैं। ऐसे भेद अनेक हैं और उनकी सूची पर्याप्त लम्बी है।

: २ :

अवधी-काव्य

वीर-गाथा-काल

नवीन खोजों के आधार पर सिद्धकवि सरहपा (सं० ७५०) हिन्दी के सर्वप्रथम कवि थे। इस समय तक अपभ्रंश की गौरवशालिनी कृतियों के अन्तर्गत भाषा-सम्बन्धी सरलता दृष्टिगोचर होने लगी थी, जो जनता की स्वाभाविक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर अपने को साहित्यिक विधानों से मुक्त करती है। परन्तु फिर सिद्ध, जैन, नाथ कवियों की भाषा किसी-न-किसी अंश में अपभ्रंश से प्रभावित है। यह प्रभाव वीर-गाथा-काल तक उपलब्ध होता है। वीर-गाथा-काल की भाषा राजस्थानी डिंगल भाषा थी। यह डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी। लगभग सं० १००० से १२०० तक राजस्थान की यह भाषा डिंगल ही काव्य या साहित्य-रचना की भाषा बनी रही। इसके अन्तर्गत दर्जनों वीर-काव्यों की रचना हुई; जिनसे न केवल तत्कालीन देश की संस्कृति और समाज का अच्छा आभास मिलता है वरन् इतिहास को पर्याप्त योगदान प्राप्त होता है। इस युग के ग्रन्थ विशेष रूप से वीर-चरित-काव्य हैं।

देश की परिवर्तनशील स्थिति, बदलते हुए इतिहास, और विस्तृत विवरण के वर्णन का माध्यम राजस्थान की यह डिंगल भाषा ही रही। इन

दो सौ वर्षों में यदि कोई भी अपवाद उपलब्ध होता है तो वह है 'आल्ह खण्ड'। 'आल्ह खण्ड' वर्ण्य विषय की दृष्टि से तो वीर-गाथाओं की महान् परम्परा में ही गिना जायगा, परन्तु भाषा की दृष्टि से वीर-गाथा-काल के दो सौ वर्षों के साहित्य में वह अपवाद माना जायगा।

'आल्ह खण्ड' की रचना का माध्यम अवधी भाषा रहा है।

अवध-प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विवरण पर दृष्टि-पात करने से स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रदेश में वीरतापूर्ण कार्यों को सम्पादित करने की परम्परा बड़ी प्राचीन रही है। अवध का बैसवाड़ा (जो किसी समय बैस ठाकुरों के द्वारा बसाया गया था) की वीरता और साहसपूर्ण परम्पराओं से बड़ा निकट सम्बन्ध रहा है। अवधी का सर्वप्रथम काव्य-ग्रन्थ (जो इस समय तक उपलब्ध है) सं० १२३० में वीर-काव्य के सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी कवि जगनिक के द्वारा लिखा गया। इसकी कथा का सम्बन्ध महोबे के वीरों—आल्हा-उदल—के चरित से है। महाराज पृथ्वीराज की मृत्यु के लगभग ग्यारह वर्ष बाद वीरों के केन्द्र-स्थल महोबा का भी पतन हो गया। महोबा के पतन के साथ ही परमाल का यश, जो इस ग्रन्थ में सविस्तर वर्णित हुआ है, विस्तृत होता गया। जगनिक की इस रचना का नाम है 'आल्ह खण्ड'।

'आल्ह खण्ड' उत्तर भारत की एक बड़ी ही लोकप्रिय रचना रही है। साहित्य की दृष्टि से इसका उतना अधिक महत्त्व नहीं है जितना जन-साधारण की अभिरुचि के अनुसार वर्णन का महत्त्व है। मौखिक रूप में रहने के कारण उसकी भाषा और पाठ अत्यन्त विकृत हो गए हैं। इस ग्रन्थ को लिपिबद्ध करने का श्रेय सर चार्ल्स इलियट को है। उन्होंने इसे सन् १८६५ में फर्रुखाबाद जिले में लिपिबद्ध कराया था।

'आल्ह खण्ड' कदाचित् अवधी का सर्वप्रथम काव्य-ग्रन्थ है। 'आल्ह-खण्ड' में वर्णनों की पुनरुक्तियों की भरमार है। अनेक प्रसंग शैथिल्यपूर्ण हैं। अत्युक्ति हास्यास्पद हो गई है। डॉ० रामकुमार वर्मा इसके महत्त्व का उल्लेख करते हुए लिखते हैं : **"इस रचना में वीरत्व की मनोरम गाथा है,**

जिसमें उत्साह और गौरव की मर्यादा सुन्दर रूप से निबाही गई है। रचना के समय से लेकर अभी तक न जाने कितने सुप्त हृदयों में इसने साहस और जीवन का मन्त्र फूँका है। इस रचना ने यद्यपि साहित्य में कोई प्रमुख स्थान नहीं बनाया, तथापि इसने जनता की सुप्त भावनाओं को सदैव गौरव के गर्व से सजीव रखा। यह जन-समूह की निधि है और इस दृष्टि से इसके महत्त्व का मूल्य आँकना चाहिए।"[1] सच तो यह है कि वीर-गाथाओं में जितना प्रचार 'आल्ह खण्ड' के भाग्य में था उतना अन्य किसी भी ग्रन्थ को नसीब नहीं हुआ।

ऊपर कहा जा चुका है कि 'आल्ह खण्ड' की रचना अवधी में हुई है। परन्तु अधिक समय तक मौखिक रहने के कारण इसकी भाषा में बुन्देल-खण्डी के शब्दों की बहुलता है। 'आल्ह खण्ड' इस बात का प्रमाण और उदाहरण है कि सर्वसाधारण की बोल-चाल की भाषा भी ओजपूर्ण विषयों की रचना का माध्यम बन सकती है। 'आल्हा' से यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:

कूदे लाखन तब हौदा ते, औ धरती माँ पहुचे आइ।
गगरी भर के फूल भगाओं सो मुरुही को दियो पियाइ।
भाँग मिठाई तुरतै दइ दइ, दुहरे घोट अफीमन क्वार।
राती माती हाथिनि करिकै, दुहरे आंइ दये डराय।
जैसे भेडहा भेड़न पैठे, जैसे सिंह बिडारे गाय।
वह गत कीन्ही है लाखन ने, नदी बेतवा के मैदान।
देवि दाहिनी भइ लाखन को, मुरचा हटा पिथौरा क्वार।

जगनिक की भाषा में ओज और प्रवाह सर्वत्र उपलब्ध होता है। कवि ने वर्ण्य विषय के उपयुक्त और अनुकूल भाषा के शब्दों का चयन किया है। सेनाओं के युद्ध करने, युद्ध-स्थल के लिए प्रस्थान करने आदि का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। इन प्रसंगों में भाषा और शब्दों के चयन का

---

१. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृष्ठ २८१।

कौशल देखते ही बनता है। कवि की सफलता इस बात में है कि वह वर्ण्य विषय का चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर देता है। यह सामर्थ्य कवि में बहुत कम पाई जाती है।

जगनिक का यह ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के अनन्तर अवध-प्रदेश का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है।

भक्ति-काल

हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते, देश की परिवर्तनशील राजनीतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण साहित्य के आदर्शों में महान् क्रान्ति समुपस्थित हो गई। इस समय तक खिलजी-वंश के अलाउद्दीन का समस्त उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित हो गया था। दक्षिण भारत भी उसके आक्रमणों से नहीं बच सका। देव-गिरि, वारंगल, होयसिल, एलिचपुर, महाराष्ट्र, कर्नाटक उसकी राज्य-सीमा के अंग बन चुके थे। सिन्ध राजपूतों के अधिकार में था, पर मुसलमानों के आतंक से वह सदैव त्रस्त रहता था। सच बात तो यह है कि मुसलमानों की शक्तिमत्ता, ऐश्वर्यप्रियता और महत्त्वाकांक्षा ने हिन्दू राजाओं को जर्जरित और विच्छिन्न कर दिया था। विनाशशील हिन्दू-शासकों के पास न धन-बल था, न जन-बल; और न आत्मिक बल। उनका गौरव मुसलमानों की तलवारों के पानी में डूबकर विनष्ट हो गया था। जब उनका गौरव ही विलीन हो गया तो गौरव-गाथाओं के गान के लिए कहाँ अवकाश था। आश्रयदाताओं के अभाव में आश्रय को कौन पूछने वाला था। वीरतापूर्ण युद्धों, चरित्रों और कृत्यों के न रहने पर उनके गुण-गान का प्रश्न ही नहीं उठता था। इस प्रकार चारणों के अभाव में वीर-गाथाओं का महत्त्व नित्य-प्रति क्षीण होता गया। इतना अवश्य था कि राजस्थान के राजपूत अभी तक अपने गौरव की गाथा नहीं भूले थे। मुसलमानों की असावधानी देखते ही वे फिर प्रचण्ड हो उठते थे। पर ये दिन उनकी अवनति के थे। मुसलमानों का आधिपत्य दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। वे राज्य के साथ अपने धर्म का विस्तार भी करते जा रहे थे; जिससे हिन्दुओं के प्राचीन

आदर्शों पर आघात होता था। मुसलमानी धर्म की कट्टरता हिन्दुत्व के विपक्ष में होकर जनता के हृदय में असन्तोष और विद्रोह का बीज वपन कर रही थी। हिन्दुओं के पास शक्ति नहीं थी, अतएव वे मुसलमानों से युद्ध नहीं कर सकते थे, उन्हें अपमान का दण्ड नहीं दे सकते थे। ऐसी परिस्थिति में वे केवल ईश्वर से अपनी रक्षा की प्रार्थना-भर कर सकते थे।[1] 'निर्बल के बल राम' का भाव भारतीय जनता के हृदय में पुनः जागरित हो उठा। शक्ति और सामर्थ्य-विहीनता की अवस्था में उन्होंने अपने समस्त प्रतिशोधों और प्रतिकारों की भावना को सर्वशक्तिमान के चरणों में समर्पित कर दिया। आततायियों को स्वतः दण्ड देने की अपेक्षा ईश्वरीय शक्ति पर निर्भर होकर वे दैन्य-भाव से जीवन-यापन करने लगे। वीरता, ओज और गौरव की भावना का स्थान शान्त तथा दैन्य भाव ने ग्रहण कर लिया। सामाजिक और धार्मिक स्थिति के बदलने के साथ ही साहित्य की धारा में भी एक नया मोड़ उपस्थित हो गया। जनता के कवियों ने धर्म-प्रचार करके ईश्वर के स्तवन में ही अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया। जनता के इन प्रतिनिधि कवियों ने धार्मिक महत्त्व-सम्पन्न तीर्थों को ही अपना केन्द्र बनाया और अपने निवास-स्थान की भाषा के माध्यम से काव्य-रचना प्रारम्भ की। कालान्तर में उन केन्द्रों की भाषा ने साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर लिया। इसीलिए भक्ति-काल में जिन दो भाषाओं को प्रधानता मिली उनमें प्रथम व्रजभाषा थी और द्वितीय अवधी। इन भाषाओं की कोमलता और मधुरता वर्ण्य विषय के सर्वथा अनुकूल थी। डिंगल भाषा की कर्कशता तथा कर्ण-कटुता श्रीकृष्ण और श्रीराम के चरित्र के माधुर्य की अभिव्यञ्जना सफलतापूर्वक कभी भी नहीं कर सकती थी।

भक्ति-काल में साहित्य की धारा चार रूपों में दृष्टिगत होती है। इनमें सर्वप्रथम था सन्त-काव्य, द्वितीय प्रेम-काव्य, तृतीय राम-काव्य और चतुर्थ कृष्ण-काव्य। इनमें से कृष्ण-काव्य की रचना तो पूर्ण रूप से व्रजभाषा में हुई। प्रेम-काव्य और राम-काव्य-साहित्य का अधिकांश अवधी में लिखा

१. 'आलोचनात्मक इतिहास', पृष्ठ २७०।

गया; कारण कि इस साहित्य के अधिक कवि अवध-प्रदेश के ही निवासी थे या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उनका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में इस प्रदेश से अवश्य था। सन्त-साहित्य की भाषा, यों तो सधुक्कड़ी भाषा कही जाती है, परन्तु तथ्य यह है कि इस साहित्य के कुछ कवि ऐसे हैं जिन्होंने अपने काव्य की रचना अवधी के माध्यम से की थी।

सन्त-कवियों में अवधी के माध्यम से काव्य-रचना करने वालों में सर्व-प्रथम कवि *मलूकदास* थे। इनका जन्म इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक सुप्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक नगर में सम्वत् १६३१ में हुआ, जिस समय गोस्वामी जी ने 'रामचरित मानस' की रचना अवधी में प्रारम्भ की थी। इनकी मृत्यु सम्वत् १७३९ वि० में १०८ वर्ष की आयु में हुई। मलूक-दास ने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना अवधी में ही की है। कवि के 'राम अवतार लीला', 'ज्ञानबोध', 'सुख सागर' आदि ग्रन्थों की रचना इसी भाषा में हुई। अवधी भाषा का अधिक सुष्टु और सुन्दर रूप उसके स्फुट साहित्य एवं साखियों में उपलब्ध होता है। कवि की भाषा में संस्कृत के तद्भव तथा फ़ारसी-शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ कतिपय पंक्तियाँ पढ़िये :

१. ना वहु रीझै जपु-तपु कीन्हे, ना आतमु के जारे।
ना वहु रीझै धोती-नेती, ना काया के पखारे।

२. पीर पीर सबु कोउ कहै पीर न चीन्है कोउ।

मथुरादास का समय १६४० वि० माना जाता है। ये मलूकदास के शिष्य और निकट सम्बन्धी थे। इन्होंने मलूकदास के जीवन-चरित्र से सम्ब-न्धित ग्रन्थ 'परिचयी' की रचना अवधी के माध्यम से की। मथुरादास ने इसके अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थों की रचना की, जो अवधी में ही लिखे गए। मथुरादास की भाषा में अवधी के शब्दों को खूब तोड़ा-मरोड़ा गया है। आवश्यकतानुसार शब्द को छन्द में बैठाने के लिए कवि ने उसे गढ़ने का प्रयत्न कर डाला है। मलूक की भाषा में खड़ी बोली का प्रभाव बहुत प्रमुख रूप से दृष्टिगत होता है, परन्तु मथुरादास की भाषा अपरिमार्जित और

ग्रामीण रूप को लिये हुए है। कवि के प्रायः सभी ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

सन्त कवि *धरनीदास* का जन्म सम्वत् १७१३ वि० में छपरा जिला के माँझी गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम परसरामदास था। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्य प्रकाश' और 'प्रेम प्रकाश' हैं। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि का स्फुट साहित्य भी बहुत अधिक है। कवि की रचनाओं में अवधी का साहित्यिक रूप उपलब्ध होता है। जिन क्रिया-पदों का प्रयोग कवि की भाषा में हुआ है वह शुद्ध अवधी के ही हैं :

करता राम करै सोइ होय।
कल बलु छलु बुधि ज्ञान सयानप, कोटि करै जो कोय॥
देई देवा सेवा करिके भरम भुले नर लोय।
आवत जात भरत औ जनमत करम काँट अरुझोय।
काहे भवनु तजि मेष बनायौ, ममता मैलु न धोयौ।
मन मवासु चपरि नहि तोडेउ, आस फाँस नहि छोयौ॥

धरनीदास जी की भाषा व्रज और अन्य प्रान्तीय बोलियों से प्रभावित है।

सन्त *चरनदास* का जन्म सम्वत् १७६० में राजपूताना के मेवात प्रदेश के डेहरा ग्राम में मुरलीधर के घर में हुआ था। इनकी मृत्यु-सम्वत् १८३९ वि० माना जाता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर ६-१० वर्ष की अवस्था में चरनदास अपने मातामह के घर दिल्ली चले आए और जीवन-पर्यन्त वहीं रहे। दिल्ली में ही उन्होंने अपने समस्त ग्रन्थों की रचना की। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'ज्ञान स्वरोदय', 'अष्टांग योग', 'पंचोपनिषद् सार', 'भक्ति पदार्थ', 'अमरलोक अखण्ड धाम', 'सन्देह सागर', 'भक्ति सागर' आदि। इनके प्रामाणिक ग्रन्थों की संख्या २१ है। कवि के अधिकांश ग्रन्थों और साखियों की रचना अवधी भाषा में ही हुई है। परन्तु उसमें खड़ी बोली का विकासमान स्वरूप सर्वत्र परिलक्षित होता है। कवि की भाषा संस्कृत के तद्भव और फ़ारसी एवं अरबी के शब्दों से प्रभावित है। संक्षेपतः कवि की अवधी भाषा सधुक्कड़ी बोली से बहुत काफी प्रभावित है। कवि की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धरण के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं :

आवौ साधो हिलि-मिलि हरि जसु गावैं ।
प्रेम-भक्ति की रीति समुझ करि, हित सूँ राम रिझावैं ॥
गोबिन्द के कौतुक गुन लीला ताहि को ध्यान लगावैं ।
सेवा सुमिरन बन्दनु अरचनु नौधा सूँ चितु लावैं ॥
अबकी औसरु भला बना है बहुरि दाँव कबु पावैं ।
भजन प्रताप तरैं भव सागर उर आनन्द बढ़ावैं ॥
सतसंगति का साबुन लैके ममता मैलु बहावैं ।
मन कूँ धो निरमल करि उज्जल मगन रूप हो जावैं ॥

रामरूप जी सन्त चरनदास के शिष्य थे और समकालीन कवि थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'गुरु भक्ति प्रकाश', जिसमें कवि ने चरनदास के चरित्र एवं चरित का उल्लेख किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ को रचना अवधी भाषा में की गई है। उदाहरणार्थ कवि की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना असंगत न होगा :

मेवत देश के अलवर पासा। डहरा गाँव जु अधिक सुवासा ॥
ताके निकटै सरिता बहै। जित की सृष्टि महासुख लहै ॥
आस-पास बहु बाग सुहावै। फूलैं-फलैं हरष छबि छावै ॥
ताको जन्म लियो सुखदाई। रामरूप तिनकी शरनाई ॥

इन पंक्तियों में कवि की भाषा का अत्यन्त सरल और सहज रूप दृष्टिगत होता है। भाषा में प्रवाह है और आवश्यकतानुसार शब्दों का रूप विकृत भी कर लिया गया है।

इन कवियों के अतिरिक्त सहजोबाई, दयाबाई, धरमदास, पलटूसाहब आदि ऐसे कवि हैं जिनकी कविता में अवधी के सर्वनामों और क्रिया-पदों के प्रयोग बराबर मिलते हैं। साथ ही अवधी के शब्दों की बहुलता है। परन्तु फिर भी हम उनकी भाषा को अवधी कहने में संकोच करते हैं। कारण कि उनकी भाषा व्रज या भोजपुरी के अधिक निकट प्रतीत होती है।

सन्तों की भाषा पर विचार करते समय हमारे मस्तिष्क में चार प्रकार के भाव उठते हैं। सर्वप्रथम यह कि इस साहित्य की भाषा बहुत ही

अपरिष्कृत है। भाषा के द्वारा भावों का प्रकाशन कवियों का प्रधान लक्ष्य था। उन्हें भाषा-विषयक प्रयोग करने का न तो अवकाश ही था, और न अभिरुचि ही। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा वे अन्तस् के सौन्दर्य पर अधिक जोर देते हैं। इसी कारण काव्य की आत्मा के प्रति वे विशेष अनुरक्त हैं। दूसरी बात यह है कि अधिकतर सन्त-कवि अशिक्षित या निरक्षर थे। इनकी रचनाएँ बहुत समय तक लिपिबद्ध नहीं हुई थीं, अतएव जिस प्रदेश में ये प्रचलित रहीं उसी भाषा का प्रभाव उस काव्य पर अनिवार्य रूप से परिलक्षित होता है। एक ही कवि की भाषा अनेक प्रकारों में उपलब्ध होने का यही तो रहस्य है। तीसरी बात यह है कि सन्तों ने समाज के कल्याण-हेतु ही काव्य-रचना की। वे भ्रमणशील प्राणी थे। अतएव उनकी भाषा पर सभी प्रदेशों के शब्दों का प्रभाव पड़ा। उनका काव्य बृहत्तर समाज की वस्तु बन गया। चौथे यह कि गेय रहने के कारण इनकी भाषा एक मुख से दूसरे मुख तक जाने में निरन्तर परिवर्तनशील बनी रही। इस कारण जो अवध या अवधी-भाषी प्रदेश के रहने वाले कवि थे उनकी भाषा में भी भोजपुरी या पंजाबीपन का प्रभाव परिलक्षित होता है। सच बात तो यह है कि सन्तों ने भाषा की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। फिर उनकी भाषा का मूल्यांकन ही क्या ?

प्रेम-काव्य

प्रेम-काव्य सद्भावना से प्रेरित होकर कुछ सूफ़ी मुसलमान और हिन्दू-कवियों के कोमल हृदय का आभास या अभिव्यक्ति है। देश में मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने के अनन्तर उन्हें यहाँ से हटाया न जा सकता था और हिन्दुओं को समूल विनष्ट करके एक नवीन राष्ट्र की स्थापना का ही स्वप्न देखा जा सकता था। कटुता की भावना रखकर या हृदय में छिपाकर दोनों जातियों का सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन कभी भी सुखमय नहीं हो सकता था। पारस्परिक वैमनस्य उनके जीवन में शान्ति और सुख के लहलहाते हुए वृक्ष को छिन्न-विच्छिन्न किये डाल रहा था। ऐसी दशा में उनके मध्यस्थ प्रेम, ऐक्य, सद्भावना की स्थापना की आवश्यकता का

अनुभव प्रायः सभी लोग कर रहे थे। परन्तु यह कार्य सूफी कवियों द्वारा सम्पन्न हुआ : "ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर की कहानियाँ लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे। ये कहानियाँ हिन्दुओं के ही घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य-मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है और जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप-रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटाकर एकत्व का अनुभव करने लगता है।......हिन्दू-हृदय और मुसलमान-हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हींका नाम लेना पड़ता है। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया"।[1] इन कवियों के काव्य की भाषा अवधी थी।

प्रेमाख्यानकार मुसलमान कवि

हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही प्रकार के प्रेमाख्यानकार सूफ़ी कवियों की भाषा सामान्यतया अवधी ही रही है। इन सभी कवियों में केवल *जान* अपवाद के रूप में माने जा सकते हैं। शेष ने अपनी कहानियों की अभिव्यक्ति का माध्यम अवधी ही रखा है। इसका सर्वप्रथम कारण यह है कि लगभग सभी प्रेमाख्यानकार कवियों का अवध से किसी-न-किसी प्रकार का निकट सम्बन्ध था। इनमें ६० प्रतिशत अवधी-भाषी प्रदेश के निवासी थे। *'कुतबन'* एवं *'मंझन'* के जन्म-स्थानों के विषय में हमें कोई विशेष ज्ञान नहीं है, परन्तु उनकी भाषा से प्रकट हो जाता है कि उन्हें अवधी के मूल रूप एवं व्याकरण का भला ज्ञान था। यह सम्भाव्य है कि ये दोनों कवि अवध-प्रदेश के ही निवासी थे। इसी प्रकार *क़ासिम शाह* का निवास-स्थान दरियाबाद, *निसार कवि* का शेखपुर, (रायबरेली), *ख्वाजा अहमद* का बाबूगंज। (प्रतापगढ़), एवं *शेख रहीम* का जीवन गाँव (बहराइच)

१. 'त्रिवेणी', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २—४।

था। *नसीर* एवं *उसमान* का निवास गाजीपुर तथा *नूर मुहम्मद* का स्थान जौनपुर माना जाता है। अवध-प्रदेश के प्रिय छन्द दोहा और चौपाई इनके काव्य-ग्रन्थों में बराबर प्रयुक्त हुए हैं। इन कवियों के दोहों की भाषा में जो प्रवाह एवं सफाई है, कथा-शैली में जो सजीवता और गति है, वह अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होती है। इनका अनुभव-गाम्भीर्य, उद्‌गारों की स्वाभाविकता एवं सरलता तथा कवि की मस्ती तीनों मिलकर साहित्य को चित्ताकर्षक बना देती है। परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि इन सभी प्रेमाख्यान-लेखकों का भाषा पर असाधारण अधिकार था। अवधी के लेखकों में से जायसी, उसमान और नूर मुहम्मद का भाषा पर अच्छा अधिकार है। ख्वाजा अहमद, निसार और कासिम शाह के भाषा-विषयक-प्रयोग सुन्दर हुए हैं। उसमान की अवधी कहीं-कहीं भोजपुरी से प्रभावित है। इसके साथ-ही-साथ इन समस्त कवियों की भाषा में अरबी, फारसी तथा तुर्की आदि के शब्दों, कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है। इन कवियों की अवधी में स्थान-स्थान पर संस्कृत के तद्‌भव एवं तत्सम शब्दों का प्रयोग भी मिल जाता है। ये सभी कवि पढ़े-लिखे और साक्षर थे। उन्हें काव्य-रचना का पूरा-पूरा शौक और इच्छा थी। उन्होंने काव्य की रचना विशिष्ट लक्ष्य से प्रेरित होकर की थी। इसीलिए इनकी भाषा सन्तों की भाषा के समान कहीं पर अस्त-व्यस्त या अपरिष्कृत दृष्टिगत नहीं होती। इन सभी कवियों में जायसी सिरमौर हैं। उनकी प्रतिभा को कोई कवि नहीं पहुँचता। क्या भाषा, क्या कहावतों तथा मुहावरों के प्रयोग, क्या अन्योक्ति-निर्वाह, क्या कथा कहने की शैली; सभी दृष्टि से हमारे प्रेमाख्यानकारों में जायसी की प्रतिभा निर्विवाद और अद्वितीय है। जायसी की सफलता का रहस्य उनकी सादी और आलंकारिक भाषा है। शुद्ध और मुहावरेदार अवधी का चलता हुआ रूप उनकी विशेषता है। इसी परम्परा में नूर-मुहम्मद को भी गिनना चाहिए। जायसी के अनन्तर नूर मुहम्मद ही भाषा की दृष्टि से श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी यमक-बाहुल्य एवं संस्कृत से प्रभावित रचना से प्रकट है कि कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार है।

अब एक-एक कवि को लेकर उसकी भाषा पर पृथक्-पृथक् विचार करना अपेक्षित होगा। सबसे पहले हम जायसी को लेते हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी—मलिक मुहम्मद के जीवन-वृत्त का अधिक पता नहीं है। ये रायबरेली के जायस नगर के रहने वाले थे। सैयद मुही-उद्दीन इनके गुरु थे। सूफ़ी-दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था। बहुत समय तक ये गाज़ीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव के आश्रय में रहे। कालान्तर में अमेठी-नरेश के आश्रय में जीवन-पर्यन्त रहे। वहीं इनकी कब्र भी बनी हुई है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' की रचना हिजरी ६४७ या सम्वत् १५६७ में हुई थी।

जायसी की काव्य-भाषा तत्कालीन बोल-चाल की अवधी है। फ़ारसी तथा अरबी के प्रचलित शब्द और मुहावरे बड़े ही स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत का अधिक ज्ञान न होने के कारण जायसी की भाषा संस्कृत के प्रभाव से पूर्णतया विमुक्त है।

जायसी ने अपभ्रंश का लोकप्रिय 'विअकबरी' या 'दोह्मा' छन्द काव्य के लिए प्रयुक्त किया है। जायसी के काव्य में पाण्डित्य के आडम्बर से विहीन अत्यन्त स्वाभाविक और यथातथ्य भाषा का रूप सुरक्षित है। भाषा और साहित्य के लिए जायसी की यह बड़ी भारी देन है।

जायसी के बराबर ठेठ पूरबी अवधी के शब्दों का प्रयोग किसी भी कवि ने नहीं किया; परन्तु पूरबी अवधी के ही व्याकरण का अनुसरण सदैव किया हो, यह सत्य नहीं। उन्होंने तुलसी के समान सकर्मक भूतकालिक क्रिया के लिंग, वचन अधिकांशतः पश्चिमी हिन्दी के ढंग पर कर्म के अनुसार ही रखे हैं :

'बसिठन्ह आइ कही अस बाता।'

इसी प्रकार पश्चिमी हिन्दी का भूतकालिक क्रिया का पुरुष-भेद-रहित रूप भी रखा है :

तुम तौ खेलि मन्दिर महँ आई।

कहीं-कहीं पश्चिमी साधारण क्रिया के 'न' वर्णांत रूप का प्रयोग भी

मिलता है :

"कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलिके खेलब इक साथा।"

यही नहीं जायसी ने पछाँही हिन्दी के बहु वचन रूप भी कहीं-कहीं रखे हैं :

(क) नसैं भईं सब ताँहि।

(ख) जो बन लाग हिलोरैं लेई।

आप 'तू' या 'तैं' के स्थान पर 'तुइँ' का अक्सर प्रयोग करते हैं। वास्तव में यह रूप कन्नौज, खीरी, शाहजहाँपुर में ही प्रचलित है।

तुलसी और जायसी ने समान रूप से अपनी रचनाओं में प्राचीन शब्दों और रूपों का प्रयोग किया है। जैसे पुहुमी, सरह, विसहर, पइह, भुवाल, अहुद, ससहर, दिनिअर, पृथ्वी, शलभ, विषधर, प्रतिष्ठ, भूपाल, अध्युष्ट, शशधर, दिनकर आदि।

प्राचीन रूपों में 'की', 'हि' या 'ह' विभक्ति का प्रयोग दोनों कवियों ने सभी कारकों में किया है :

१. जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू (कर्ता)

२. चाँटहिं करै हस्ति सरि जोगू (कर्म)

३. वजहिं तिनकहिं मारि उड़ाई (करण)

४. देस देस के बर मोहिं आवहिं (सम्प्रदान)

५. राजा गरबहिं बोलै नाहीं (अपादान)

६. सौजहिं जन सब रोबा पंखिहि तन सब पाँख।
चतुर बेद हौं पण्डित हीरामन मोहि नाँव (सम्बन्ध)

७. तोहि चढ़ि हेर कोइ नहिं साथा
कौन पानि जोहि पवन न मिला? (अधिकरण)

जायसी ने कर्ता कारक में 'हि' की विभक्ति सकर्मक भूतकालिक क्रिया के सर्वनाम कर्ता में तथा अकारान्त संज्ञा कर्ता दोनों में ही लगाई है :

१. राजै लीन्ह ऊबिकै साँसा (राजा ने)

२. सुऐ तहाँ दिन दस कल काटी (सूए ने)

प्राचीन विभक्तियों के अतिरिक्त जायसी ने कुछ प्राचीन शब्दों का भी प्रयोग किया है। जिनमें 'चाहि', 'बाज' जैसे कुछ शब्द तो आज प्रचलन से बिलकुल उठ गए हैं! उदाहरणार्थ :

१. मेघहु चाहि अधिक वै कारे (बढ़कर)

२. को उठाइ बैठारे बाज पियारे जीव। (अतिरिक्त, बिना, बगैर, छोड़कर।

इसी प्रकार 'पारना', (सकना), 'आछना' ('था', 'है', 'रहा' आदि) 'बिलकुल' का प्रयोग दोनों ही कवियों ने बहुतायत से किया है :

१. **परीनाथ कोइ छुवै न पारा** (सका)

२. **कँवल न आछै आपनि बारी** (है)

३. **मातु न जानसि बालक आदी।**
हौं बादला सिंह रनबादी॥ (निपट)

जायसी ने भूतकालिक रूप अहा (था) का भी प्रयोग किया है :

भाँट अहै ईसर की कला (था)

निश्चयार्थक शब्द पै ('निश्चय' या 'ही') का भी जायसी ने बहुलता से प्रयोग किया है :

माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँन देहुन लेहु।

अवधी वालों को दो से अधिक वर्णों के शब्दों के आदि में ह्रस्व 'इ' और ह्रस्व 'उ' के उपरान्त 'आ' का उच्चारण अधिक पसन्द है। इसीसे खड़ी बोली और ब्रज के शब्द 'स्यार', 'क्यारी', 'ब्याज', 'ब्याह', 'प्यार', 'न्याव' तथा 'द्वार', 'ख्वार', 'ग्वाल' क्रमशः अवधी में 'सियार', 'कियारी', 'बियाज', 'बियाह', 'पियार', 'नियाव' हो जाते हैं। इसी प्रकार य, व अवधी में इ, उ हो जाने से यहाँ, वहाँ, ह्याँ, ह्वाँ, इहाँ, उहाँ, या हियाँ, हुँआ बोले जाते हैं। यही नहीं, इस भाषा के बोलने वालों को अ, तथा आ के उपरान्त इ अच्छा लगता है। जैसे—आइ, जाइ, पाइ, कराइ, आइहै, जाइहै, पाइहै, कराइहै।

'ऐ' और 'और' का उच्चारण केवल यकार और वकार के पहले रह

गया है, जैसे—गैया, कन्हैया। अवधी में अइस, जइस, भइंस, दउरि आदि।

अन्य कवियों की भाँति जायसी को भी सम्भवतः श्रुति-माधुर्य का विचार रहा है, इसीसे उन्होंने 'लकार' के स्थान पर 'रकार' कर दिया है। जैसे—दल—दर, बल—बर :

होत आव दर जगत असूझू। (दल)

जायसी की भाषा ठेट अवधी है। जो नये-पुराने, पूर्वी-पश्चिमी कई प्रकार के रूपों के स्थान पा जाने से कुछ अव्यवस्थित अवश्य हो गई है; परन्तु केशव, भूषण आदि की भाँति नहीं। चरणों की पूर्ति के लिए निरर्थक शब्द नहीं भरे गए। शब्द भले ही व्याकरण-विरुद्ध मिल जायँ, पर वाक्य शिथिल और दोषपूर्ण नहीं मिलते। जैसे :

दरस देखिकै बीजु लजाना।

'लजाना' के स्थान पर 'लजानी' चाहिए। यदि छन्द-विचार से दीर्घान्त करे तो 'लजानि' होगा। यहीं नहीं, कहीं-कहीं वाक्यों में तो बड़ा प्रभाव है।

जायसी की भाषा में मुहावरे और कहावतों का भी प्रयोग हुआ है, पर बड़े सहज रूप में। वे भरती के नहीं जान पड़ते। जैसे :

जोबन नरि घटे का घटा। सत के बर जौनहिं हिय फटा॥

यहाँ हृदय 'फटना' या 'जी फटना' मुहावरों का प्रयोग हुआ है। जब जल घटने लगता है तब तालाब की मिट्टी सूखकर फट जाती है।

अब लोकोक्तियों के भी उदाहरण देखना चाहिएँ :

१. सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ।

२. धरती परा सरग को चाटा। आदि

इतना होने पर भी न्यूनपदत्व के कारण जायसी के वाक्य स्वच्छ होते हुए भी तुलसी-जैसे सुव्यवस्थित नहीं। विभक्तियों, सम्बन्ध-वाचक सर्वनामों तथा अव्ययों का लोप करने में जायसी ने बोल-चाल की भाषा का विचार नहीं रखा। उन्होंने इनका मनमाना लोप किया है। इसीसे प्रसाद गुण कहीं-कहीं बिलकुल जाता रहा है और अर्थ तक पहुँचना कठिन हो गया है। जैसे :

सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। पड़ा खड्ग जनु परा निहाऊ॥

से 'खड्ग' क्या, मानो 'निहाई पड़ी' अर्थ निकलता है; पर कवि का तात्पर्य है मानो खड्ग निहाई 'पर' पड़ा। पर के लोप से यह दशा हो गई।

अव्ययों के लोप में भी अर्थों की यही दशा हो गई है :

१. **पुनि सो रहै, रहै नहिं कोई।** (दूसरे रहै के पहले 'जब' चाहिए)

२. **तब तहँ चढ़ै फिरै नौ भँवरी,** (फिरै जब फिरै)

सम्बन्ध-वाचक सर्वनामों के लोप में तो जायसी ब्राउनिंग से भी आगे बढ़ गए हैं।

'कह सो दीप 'पतंग' के मारा' यहाँ पतंग के पहले 'जेइ' के लुप्त होने से अर्थ तक पहुँचने में बाधा पड़ती है।

हिन्दी के अधिकांश कवियों की भाँति जायसी ने शब्दों का तोड़-मरोड़ नहीं किया। पदों के अन्त में दीर्घान्त करने के अतिरिक्त उन्होंने उनमें रूपान्तर नहीं किया।

'विप्र रूप धरि झिलमिल इन्दू' में 'इन्द्र' से 'इन्दू' करना ठीक नहीं। पर ऐसे स्थान एक-दो ही मिलेंगे।

जायसी में निरास (जो किसी की आशा नहीं, जो किसी का आश्रित न हो) तथा बिसवास (विश्वास-घात)-जैसे दो-एक शब्दों का ऐसे अर्थों में प्रयोग किया है, जो व्यवहार में नहीं आते। जैसे :

१. **राजै बीरा दीन्ह, नहि जाना बिसवास।**

२. **तेहि निरास प्रीतम कँह जिउन देउँ का देउँ।**

फ़ारसी की इस झलक को छोड़कर जायसी की भाषा बोल-चाल की भाषा है। देशी साँचे में ढली हुई, हिन्दुओं की घरेलू, मधुर मनोमोहक भाषा। उसका माधुर्य अनोखा माधुर्य है, जिसे अवधी का अपना मिठास कहा जा सकता है। तुलसी की संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली का उसमें कोई हाथ नहीं। जायसी तुलसी-जैसी संस्कृत-पदावली-गर्भित भाषा भले ही न लिख सके हों और तुलसी दोनों ही प्रकार की ठेठ अवधी

और संस्कृत-पदावली-युक्त; परन्तु जायसी की भाषा एक ही ढंग की सही, पर है अनूठी और सुन्दरतम। शुद्ध, बे-मेल अवधी की मिठास के लिए 'पद्मावत'-कानन में कूकती हुई कोकिला के प्रति कान लगाने ही पड़ेंगे। अन्य कहीं अवधी का यह माधुर्य न मिलेगा।

कुतबन—हिन्दी के प्रेमाख्यानकारों में कुतबन का नाम सर्वप्रथम आता है। ये चिश्ती-सम्प्रदाय के शेख बुरहान के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मृगावती' है, जिसकी रचना सं० १५६० में हुई थी। मुल्ला दाऊद की 'चन्दम्बन' उपलब्ध न होने के कारण कुतबन की प्रस्तुत रचना ही सर्वप्रथम प्रेम-गाथा है। इसकी रचना अवधी में हुई है। कवि की भाषा में अवधी का ठेठ अपरिमार्जित और ग्रामीण रूप दृष्टिगत होता है। इसमें संस्कृत के तद्-भव शब्दों का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है। कवि की भाषा भावों के अनुकूल और उपयुक्त है :

नागरी सगरी बियोग सताँवइ। घर-घर इहै बात जनावइ॥
योगी एक कतहुँ ते आवा। बिरही बियोग संताप जगावा॥
एही रे बात मृगावति सुनी। आएसु एक आवा बहु गुनी॥
आग्या भई बोला वहु ताही। पूछहु कवनु देसकर आही॥
चेरी तीस एक उठि धाई। आएसु बार बोलावन आई॥

तथा

करम आजु भल अहइ हमारा। सिध होइ कै गुरु हंकारा॥
सभी रे सारद मुष देषे पावउ। जरे प्रेम होहि सीरावउ॥
सातौ पाँवरी लाँघि जो आवा। बेगर-बेगर सात उभावा॥

इन पंक्तियों से कवि की भाषा का ज्ञान हो जाता है। कवि की भाषा न अधिक परिमार्जित है, और न इसमें प्रवाह है। जायसी की भाषा भी ग्रामीण अवधी ही है, परन्तु उसमें प्रवाह और परिमार्जितता दोनों ही हैं। जायसी की भाषा में शब्द बहुत तौल-तौलकर प्रयुक्त हुए हैं, यह बात कुतबन के काव्य में नहीं है।

मंझन—मंझन ने अपने ग्रन्थ 'मधु मालती' की रचना सन् १५४५

में की थी। 'मधु मालती' की प्रति खण्डित और अपूर्ण दशा में प्राप्त होती है। मंझन के जन्म-स्थान तथा परिचय की अन्य बातें आजकल रहस्य बनी हुई हैं। 'मधु मालती' का रचना-समय 'पद्मावत' के अनन्तर निश्चित होता है, परन्तु फिर भी कवि की भाषा में वह परिष्कार तथा माधुर्य नहीं है, जो जायसी की अवधी में उपलब्ध होता है। प्रतीत होता है कि मंझन जायसी के समान शिक्षित और भाषाविज्ञ नहीं थे। उदाहरणार्थ यहाँ अवधी का रूप स्पष्ट करने के लिए उनकी कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

दुख मानुस कर आदिक बासा। ब्रह्म कँवल महँ दुखकर बासा॥
जेहि दिन सृष्टि दुःख समाना। तेहि दिन मै जिव कै जिव जाना॥
मोहि न आज उपज्यौ दुख तोरा। तोर दुख आदि संघाती मोरा॥
अवले भवन दुःख के काँवर। दुइ जग दीनों सुख न्योछावर॥
मैं अपान दै तोर दुख लिया। मरके अवसो अमृत पिया॥

उसमान—उसमान की प्रसिद्ध रचना 'चित्रावली' है। इनका जन्म-स्थान गाजीपुर था। इसका प्रमाण उसकी निम्न पंक्तियाँ हैं :

गाजीपुर उत्तम अस्थाना। देवस्थान आदि जग जाना॥
गंगा मिलि जमुना तहँ आई। बीच मिली गोमती सुहाई॥
तिरधारा उत्तम तट चीन्हा। द्वापर तहँ देवतन्ह तप कीन्हा॥

ये हाजी बाबा के शिष्य और शेख हुसेन के पुत्र थे। इनके चार भाई थे—शेख अजीज, मानुल्लाह, शेख फैजुल्लाह तथा शेख हसन; जो विभिन्न कलाओं में पारंगत थे। उसमान का उपनाम मान था। उसमान बड़े निरभिमानी और विनयशील स्वभाव के थे। इस विषय में यह अन्तःसाक्ष्य पठनीय है :

आदि हुता विधि माथे लिखा। अच्छर चारि पढ़ै हम सिखा॥
देखत जगत अला सब जाई। एक वचन पै अमर रहाई॥
वचन समान सुधा जग नाहीं। जेहि पाय कवि अमर कहाहीं॥

इनका रचना-काल सन् १०२२ हिजरी (सन् १६५३) था :

सन् सहस्र बाइस जब अहे। तब हम बचन चारि एक कहे॥

कहत करेजा लोहु भवानी । सोई जान पीर जिन्ह जानी ॥

'चित्रावली' की रचना जायसी से लगभग ७५ वर्ष पूर्व हुई थी । इसीलिए 'पद्मावत' और 'चित्रावली' की भाषा-शैली में बहुत-कुछ साम्य है । फिर भी उसमान की भाषा जायसी की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ और परिमार्जित है । श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी का मत है कि **"यह तुलसी के समसामयिक थे और संस्कृत का ज्ञान यदि इन्हें होता तो इनकी भाषा प्रौढ़ता में उनके आस-पास पहुँचती ।"**[1] उसमान के काव्य में लोकोक्तियों का प्रयोग बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है ।

आलम—आलम के विषय में अनेक भ्रमपूर्ण धारणाएँ प्रचलित हैं । कुछ विद्वानों का विचार है कि 'माधवानल कामकन्दला' और 'आलम केलि' के रचयिता आलम एक ही व्यक्ति थे । वस्तुतः दोनों ग्रन्थों के रचयिता दो भिन्न-भिन्न आलम थे । आलम की प्रमुख कृति 'माधवानल कामकन्दला' थी, जिसका रचना-काल सन् ९९१ हिजरी (१६४० ई०) था । यह अकबर का राज्य-काल था । अकबर के अर्थ-सचिव टोडरमल आलम के आश्रयदाता थे । नीचे की पंक्तियाँ देखिये :

सन् नौ सै इक्यानुवै आइ । करौं कथा अब बोलौं ताहि ॥
दिलियपति अकबर सुलताना । सत्य दीप मै जाकी आना ॥
सिहनपति जगन्नाथ सुतेला । आपुन गुरु जगत सब चेला ॥
जब घर भूमि पयानौ करई । वासुक इन्द्र आसन था थरई ॥
धर्मराज सब देस चलावा । हिन्दू तुरुक पंच सबुलावा ॥
आगरैंवु महामति मंडनु । नृप राजा टोडरमल डंडनु ॥

आलम की अवधी का रूप परिष्कृत है । इसमें स्थान-स्थान पर संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से साहित्यिकता आ गई है । कवि ने संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है । जायसी की अपेक्षा आलम की भाषा में परिमार्जन, परिष्कार और प्रवाह सर्वत्र उपलब्ध होता है । उदाहरणार्थ कतिपय पंक्तियाँ पढ़िये :

1. 'हिन्दी-प्रेमगाथा-काव्य-संग्रह', पृष्ठ १३ ।

नृत्य गीत विद्या चतुराई। गई बिसरि गुन की अतुराई॥
बदन मलीन पीतरंग भयऊ। रकत माँस सूखि सब गयऊ॥
राजा बोलति मीठे बैना। बिरहिनि नारि न जोरै नैना॥
राजा बोलहि उतर नहि देई। बरुनी छूँटि नैन भरि लेई॥[1]

नूर मुहम्मद—नूर मुहम्मद की प्रसिद्ध रचना 'इन्द्रावती' है। इसका केवल प्रथम भाग नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। नूर मुहम्मद का जन्म-स्थान सबरहद था; जैसा कि प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है :

कवि अस्थान कीन्ह जेहि ठाऊँ। सो वह ठाऊँ सबरहद नाऊँ॥
पूरब दिस कइलास समाना। अहै नसीरुद्दी को थाना॥

अपने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कवि का निम्न लिखित कथन पठनीय है :

कवि है नूर मुहम्मद नाऊँ। है पछलग सबको जग ठाऊँ॥
चुनि कविजन खेतन सों बाला। करै चहत खलिहान बिसाला॥
है कबिसमै नई तरुनाई। छूटन अबहीं कवि लरिकाई॥
जाके हिए लरिक बुधि होई। बहुतै चूक कहत है सोई॥
बिनवत कविजन कहँ कर जोरी। है थोरी बुधि पूँजिय मोरी॥
हौ हीना विद्या बुधि सेती। गरब गुमान करौ केहि सेती॥
हौ मैं लरिकाई को चेला। कहहु न पोथी खेलहु खेला॥
गुरु जब सों यह बिनती मोरी। कोप न मानहि भौंह सिकोरी॥

'इन्द्रावती' की रचना जायसी से २०० वर्ष बाद सन् ११५७ (हिजरी सम्वत् १८०१) में अन्तिम मुगल-सम्राट् मुहम्मद शाह के समय में हुई थी :

सन् इग्यारह सौ रहेउ, सत्तावन उपराह।
कैह लगेउ पोथी तबै, पाय तपी करवाह॥

नूर मुहम्मद की भाषा शुद्ध अवधी है। उसमान की भाषा की भाँति इनकी भाषा परिमार्जित नहीं, और न उसमें साहित्यिक रूप की ही प्रधानता है। इनकी भाषा में टेठ और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बहुलता के साथ हुआ है। भाषा-प्रौढ़ता की दृष्टि से भी ये उसमान से घटकर सामने आते हैं।

१. 'कन्दला-प्रेम', परीक्षा-खण्ड।

नूर मुहम्मद ने जायसी और उसमान की शैली पर ही अपने प्रबन्ध की रचना की है। इनकी भाषा में कहीं-कहीं ब्रजभाषा की छटा भी उपलब्ध हो जाती है। उदाहरणार्थ 'इन्द्रावती' से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

अलख प्रेम कारन जग कीन्हा। धन सो सीस प्रेम मँह दीन्हा॥
जाना जेहिक प्रेम मँह हीया। मरै न कबहूँ सो मर जीया।
प्रेम खेत है यह दुनियाई। प्रेमी पुरुष करत बोवाई॥
जीवन जाग प्रेम को अहई। सोवन मीच वो प्रेमी कहई।
आगतपन जल चाल समूझो। पुनि टिका माटी कहँ बूझो॥

शेख निसार—शेख निसार की ख्याति का मुख्य आधार अवधी में लिखित उनका ग्रन्थ 'यूसुफ जुलेखा' है। वे मुगल-वंश के अन्तिम सम्राट् शाह आलम के समकालीन थे। इनकी जन्म-तिथि ई० १७२२ थी :

आलम शाह हिन्द सुलताना। तेहिं के राज यह कथा बखाना॥

इसी समय अवध-प्रदेश में नवाब आसफुद्दौला का राज्य था :

चहुँ दिसि अन्ध धुन्ध सब छावा। अवध देस कों दियो बिहावा॥
येहिया खाँ आसिफ उद्दौला। तासु सहाय अहर नित मौला॥
हिन्दू सचिव वह वली नरेशा। तेहिके धरम सुखी सब देसा॥
तेहि के राजनीति जग छाए। धरम दान को सरवर पाए॥

शेख निसार का जन्म जिला रायबरेली, परगना बडरावाँ, तहसील महाराजगंज ग्राम शेखपुर में हुआ था। हमारे कवि को संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की का भला ज्ञान था और उसने इन भाषाओं में ग्रन्थों की रचना भी की थी :

सात गरंथ अनूप सुहाए। हिन्दी और पारसी सोहाए॥
संस्कृत तुरकी मन भाए। अरबी और फारसी सोहाए॥
हरि निकार के गेहूँ खाने। रस मनोज रस गीत बखाने॥
और दिवान मसनवी भाखा। कर दोई नसर पारसी राखा॥

शेख निसार विविध भाषाओं के पण्डित थे। प्रेम-गाथा-लेखकों में भाषा-विषयक ज्ञान का इतने विश्वास के साथ दावा करने वाला इनके अतिरिक्त कोई भी अन्य कवि नहीं मिलता। इनकी अवधी भाषा में हमें साहित्यिक

अवधी का परिमार्जित और सुष्ठु रूप उपलब्ध होता है। निसार की अवधी 'मानस' की तुलना में भी कुछ अंशों में परिष्कृत प्रतीत होती है। 'पद्मावत' और 'जुलेखा' की भाँति इसमें ग्रामीण शब्दों या ठेठ अवधी के शब्दों का कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता। कवि की भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। इनके कवित्तों में व्रजभाषा के शब्दों की छाया भी उपलब्ध होती है। काव्य के बहिरंग को प्रयत्न करके सजाने का शौक निसार को कभी नहीं रहा।

कासिम शाह—कासिम शाह के अवधी भाषा में रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम है 'हंस जवाहर'। इनका निवास-स्थान लखनऊ के निकट दरियाबाद स्थान है। इनके पिता का नाम इमानउल्लाह था। मुहम्मद शाह के राज्य-काल में हिजरी सन् ११४९ में इस ग्रन्थ की रचना हुई थी। कासिमशाह की अवधी में बैसवाड़ी की प्रमुखता है। भाषा में कहीं-कहीं पूरबी अवधी की छटा भी दृष्टिगत होती है। कवि की भाषा में प्रवाह है, और शब्दों के चयन में वह सतर्क प्रतीत होता है। भाषा का एक उदाहरण देखिए :

यक निस रोई बैठ अकेली। सोय गई चहुँ ओर सहेली॥
तन मन रटन वहै धुनि लागी। सुलग सुलग दगधै तन आगी॥
सुमिरै कन्त नाँव हिय माँहीं। चितवै बार-बार कोउ नाहीं॥
सुमिरि-सुमिरि मन करै अँदेसा। कत वह देस कंत जोहि देसा॥
कहँ करतार करै यक ठाँउ। कहँ मोर भाग जो टेकौं पाउँ॥

इस उद्धरण में 'दगधै', 'अँदेसा', 'ठाऊँ', 'टेकौं' शब्दों का प्रयोग सुन्दरता के साथ हुआ है। कवि की भाषा जायसी की भाषा से बहुत-कुछ साम्य रखती है।

ख्वाजा अहमद—ख्वाजा अहमद का जन्म प्रतापगढ़ जिले के बाबूगंज गाँव में सन् १८३० में हुआ था। इनके पिता का नाम लाल मुहम्मद था। अवधी में लिखित इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नूरजहाँ' सन् १९०५ में समाप्त हुआ। ग्रन्थ के समाप्त होने के केवल दो मास अनन्तर उनका देहावसान हो गया था। आगे की पंक्तियों में कवि ने काव्य-भाषा और प्रेम-

कथा-वर्णन की दृष्टि से जायसी और कासिमशाह को अपना आदर्श माना है:

मिलिक मुहम्मद पुरुख सञ्चाना। कथा पदुमिनी कीन्ह बखाना॥
गढ़ चितउर और सिंघल दीपा। लिखेउ बखान सो प्रेम सनीपा॥
और कासिम जस दरियावादी। लिखेउ हंस के कथा सो आदी॥
बलख सो चीन प्रेम रस बोवा। लिखेउ अरथ जनु समुद बिलोवा॥
अहमद तुम यन सब कइ चेला। यनके संघ चरन धैखेला॥

ख्वाजा साहब काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। इनमें कवित्व की भी अच्छी प्रतिभा थी। इनकी भाषा का अनुमान निम्न लिखित पंक्तियों से सरलता-पूर्वक हो जाता है:

हिरदै प्रेम प्रीत उलथानी। प्रेम-कथा अब लिखौं कहानी॥
कवन सो देस बसैं जहँ मूरी। जेहिके लखत होइ दुख दूरी॥
देखेउ यदि काश्रा के माँहीं। दूसर घाट अवर कहुँ नाहीं॥
काया माँझ नयनपुर घाटा। देखेउ सरनदीप के बाटा॥

शेख रहीम—शेख रहीम के पिता का नाम यार मुहम्मद और गुरु का नाम सैयद विलायतअली था। उनका जन्म बहराइच जिले के जोविलनगर में हुआ था। कवि ने भाषा और वर्णन-शैली में 'पद्मावत' और 'हंस जवाहर' को आदर्श ग्रन्थ माना है। उसीके शब्दों में :

उर्दू-फारसी कुछ-कुछ सीखों। भाषा स्वाद तनिक इस धीखों॥
पदुमावति देखो निरथाई। मलिक मुहम्मद केर बनाई॥
हंस जवाहिर कासिम केरी। पढ़ों-सुनो पुस्तक बहुतेरी॥
तहँ से मोहुँ भयो यह जोगा। भाखा भाख कहूँ संजोगा॥

स्पष्ट है कि इनको फ़ारसी, उर्दू और हिन्दी-भाषा का भला ज्ञान था। 'पद्मावत' और 'हंस जवाहर' का अध्ययन करने के अनन्तर कवि को भाषा में ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा मिली।

कवि ने 'भाषा प्रेम रस' की रचना सन् १६१५ ई० में की। इस तरह वह आधुनिक प्रेम-गाथा का रचयिता है।

शेख रहीम की भाषा परिमार्जित और साहित्यिक है। इस ग्रन्थ में

अवधी का रूप बड़ा ही सुष्ठु और आकर्षक है। इनकी भाषा जायसी की भाषा से बहुत निकट प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत करना असंगत न होगा :

गई समीप जब मालिन मैया। चन्द्र-कला की लेन बलैया॥
चन्द्र-कला उठि बिहँसी धाई। बहुत दिनन पर आयी बाई॥
पूछेउ षेम-कुशल घर केरा। माता कत कीनो तुम फेरा॥
मालिन कहा सुनो मम प्यारी। मोहनी ते तुम्हें सुन्यो दुखारी॥
भा अँदेस देखन काँ धायो। तुम्हरे रोग का औषध लायो॥
देख सकूँ नहिं तुम्हें मलीना। दुख तुम्हार आपन दुख चीन्हा॥

शेख रहीम की भाषा में बहराइच के जनपद और पास-पड़ोस में बोले जाने वाले ग्रामीण शब्दों का भी खूब प्रयोग हुआ है। कहावतों का प्रयोग और सूक्तियों की व्यञ्जना जायसी के अनन्तर शेख रहीम के काव्य में ही उपलब्ध होती है। खड़ी बोली के प्रचार और व्यवहार के इस युग में अवधी का कितना सुन्दर रूप इसकी भाषा में व्यक्त हुआ है, यह उपर्युक्त उद्धरणों से प्रकट होता है।

कवि नसीर—नसीर का जन्म-स्थान गाजीपुर जिले का जमानियाँ नामक नगर है। ये ऐनुल अहदी के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'यूसुफ जुलेखा' अवधी में ही लिखा गया है। इसका रचना-काल संवत् १६७४ है। नसीर ने जीवन-पर्यन्त बड़े-बड़े दुःखों का सामना किया। यह कहना असंगत न होगा कि दुःख उनके हृदय से सहोदर की भाँति जीवन-पर्यन्त चिपका रहा। 'यूसुफ जुलेखा' की कथा में अपने दुःखों और अनुभूतियों का आभास पाकर वे इसीके वर्णन में रम गए। कवि की भाषा के दो उदाहरण निम्न लिखित हैं :

१. प्रेम कथा यह नसीर बखाना। जेहिकर अरथ करो बढ़वाना॥
कौन रहै याकूब गियानी। कौन रहै यूसुफ परधानी॥
यूसुफ भ्रात के अरथ लगाई। कहो कि मालिक सम्परदाई॥
कौन रहै तैमूसा जानो। कौन जुलेखा रही पहचानो॥

२. सुन यह बिथा जुलेखा दाई। कहिसि जुलेखा से समझाई।
करन कदाचित सोच इह दाहा। काटे यहू परभू अवगाहा॥
वही ओह के इह नगर में लावा। वही ओहकर तोके दरस देखावा॥

हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों में अवधी भाषा का रूप

सूफ़ी आख्यान-काव्य-परम्परा हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के उदारचेता कवियों के द्वारा अपनाई गई। इन दोनों जातियों के मनस्वी कवियों ने ऐहिक प्रेमाख्यानों के सर्जन में भी समान रूप से योगदान दिया। इनमें से मुसलमान प्रेमाख्यानकारों की भाषा पर विगत पृष्ठों में विचार हो चुका है। अब यहाँ पर हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों की रचना की माध्यम अवधी भाषा की विवेचना अपेक्षित है।

हिन्दू प्रेमाख्यान-लेखकों में लगभग ३४ कवियों की खोज अब तक हुई है, परन्तु इन चौंतीस कवियों में से केवल ११ ने विशुद्ध अवधी भाषा में अपने काव्य-ग्रन्थों की रचना की थी।[1] शेष कवियों की भाषा राजस्थानी या व्रज थी। इन ग्यारह ग्रन्थों के नाम निम्न लिखित हैं :

१. सत्यवती की कथा (सम्वत् १५५२), २. रस रतन (सम्वत् १६७५), ३. नल-दमयन्ती की कथा (सम्वत् १६८२), ४. नल दमन (सम्वत् १७१४), ५. पुहुपावती (सम्वत् १७२६), ६. नल चरित (सम्वत् १७९८), ७. उषा चरित्र (सम्वत् १८३१), ८. नल दमयन्ती चरित्र (सम्वत् १८५३), ९. उषा हरण (सम्वत् १८८६), १०. उषा चरित (सम्वत् १८८८), ११. राजा चित्रमुकुट और रानी चन्द्रकिरन की कथा (१९११ के पश्चात्)।

अब इन प्रेमाख्यानों की भाषा पर पृथक्-पृथक् विचार कर लेना असंगत न होगा। सबसे पहले हम सूची की प्रथम पुस्तक 'सत्यवती की

---

1. 'हिन्दी के हिन्दू प्रेमाख्यान', लेखक डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव एम० ए०, पी-एच० डी।

कथा' को लेते हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्री ईश्वरदास थे। ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १५५८ है। इस प्रकार 'रामचरित मानस' की रचना से प्रायः ७४ वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का प्रणयन हो चुका था। गोस्वामी जी से अर्ध-शताब्दी पूर्व अवधी का क्या स्वरूप प्रचलित था, यह प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा से निश्चित हो जाता है। इसकी रचना भी मसनवी शैली के आधार पर हुई है। भाषा एवं साहित्यिक महत्त्व के साथ ही इसका ऐतिहासिक महत्त्व अत्यधिक है। यह इतिवृत्तात्मक अंशों से युक्त वर्णनात्मक काव्य है। कवि की भाषा में देशज और तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है। कवि की भाषा में प्रवाह उपलब्ध होता है। कवि की रचना से कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :

कै लासन वखाल मुरारी। तो तै सती सत्य बरनारी।
जाकर पुरुष नयन कर अंधा। कुष्टी कुबुज बाउर बंधा।
ऐसन कन्त जाहि कर सोई। सेवा करै सती जग सोई॥
नीक सुन्दर के नहि सेवै। अपना के जो सती कहावै॥

यह कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में है, जैसे कि उसके प्रस्तुत कथन **'अलप बयस भई मति कर मोरा'** से ज्ञात होता है।

द्वितीय आलोच्य-ग्रन्थ 'रस रतन' है। कवि पुहुकर ने उसकी रचना सं० १६७५ में की थी। 'रस रतन' की रचना का माध्यम अवधी का चलता हुआ रूप है। ग्रन्थ की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग से बहुत ही परिमार्जित हो गई है। उदाहरणार्थ :

सगुण रूप निर्गुण निरूप बहुगुन बिस्तारन।
अबिनासी अवगत अनादि अघ अटक निवारन॥
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुप्त निरलेप निरंजन॥

इस ग्रन्थ में पश्चिमी अवधी का सौष्टव दर्शनीय है। इसकी भाषा और शब्द-चयन प्रायः 'रामचरित मानस' के समकक्ष प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थः

पूरवीन पूरन चन्द वदनी बंक जुग भृकुटी लसै।

छुटि अलक लटक कपोल पर जनु कमल अलि-अवली लसै ॥
मृग मीन खंजन नैन अंजन, चित्त रंजन सोहई ।
बिष धार बान बिलोक बरुणी देख मनमथ मोहई ।

अपनी भाषा में कवि ने कहीं-कहीं प्रसंग की आवश्यकतानुसार डिंगल भाषा का पुट देकर उसे अधिक सजीव एवं ओजपूर्ण बना दिया है। इस प्रकार के प्रसंग सेना के संचालन और युद्ध-वर्णन में है :

पय पताल उच्छलिय रैन अंबर ह्वै हच्चिय ।
दिग दिग्गज थरहरिय दिव दिनकर रथ खिच्चिय ।
फन फनिंद फरहरिय सप्त सइर जल सुक्खिय ।
दंत पाँत गज पूरि चूरि पब्बइ पिसान किय ॥

कवि की भाषा परिमार्जित और प्रवाहमयी है। शब्दों के चयन में कवि ने विशेष ध्यान दिया है।

तृतीय ग्रन्थ है 'नल दमयन्ती की कथा'। इसका रचना-काल सं० १८६२ के पूर्व माना गया है। इसके रचयिता का नाम नरपति व्यास है। इस ग्रन्थ की रचना अवधी भाषा और दोहा-चौपाई छन्दों में हुई है। कवि ने दमयन्ती के सौन्दर्य, विरह आदि का वर्णन बड़े रहस्यात्मक ढंग से किया है। कवि की भाषा में वह प्रवाह नहीं दीख पड़ता है, जो 'रस रतन' में उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ एक छन्द निम्न लिखित है :

ज्युँ ज्युँ बिरह अगनि पर जरै। बरणु बिरह बडवानल बरई ।
सहस नयन देखि सुर राया। त्रिपति नेन होहि रूप रस भाई ॥
कहै अगनि जमु वरणु सुणि। हमको दुष सवायों जानि ।
भागवन्तु अति सुर वेराई। सहस नयन देषि त्रि भाई ॥

चतुर्थ ग्रन्थ 'नल दमन' है। इस ग्रन्थ की रचना लखनऊ के गोवर्धनदास के पुत्र सूरदास ने संवत् १७१४ में की थी। इस ग्रन्थ की रचना पूरबी अवधी में हुई है। कथा का वर्णन कृत्रिम शैली के आधार पर हुआ है। कवि को पूरबी अवधी विशेष प्रिय थी, जैसा कि निम्न लिखित अन्तः-साक्ष्य से प्रकट है :

यारो पेह कछू मैं अँखिया।
इश्क फिराक पूरबी भखिया॥

कवि की भाषा शुद्ध, सरस और प्रवाहयुक्त है। उसमें अवधी के परिमार्जित रूप के दर्शन होते हैं :

जाइ सेज मन्दिर पग धारा। दुलहन चाँद सखी सँग तारा॥
अजहूँ प्रीतम दिस्टि न आवा। बीच सखी एक खेल उठावा॥
पाँच सखी चंचल अति तिन माही। निपट खिलारन खेल अघाही॥
देखन देह न कंत पियारा। वर ही मैं अंतर कर डारा॥

इन पंक्तियों को पढ़ते ही जायसी का स्मरण हो आता है। कवि की भाषा में अवधी का पुट सर्वत्र है जो 'पद्मावत' में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है।

'पुहुपावती' के रचयिता दुःखहरन दास थे। इस ग्रन्थ का रचना-काल सं० १७२६ है। ये मलूकदास के शिष्य और गाजीपुर के निवासी थे। कवि ने भाषा के क्षेत्र में जायसी का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। असाधारण काव्य-शक्ति-सम्पन्न होने के कारण कवि की भाषा में प्रवाह, लालित्य और प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है। संक्षिप्त शब्दों में गम्भीर भाव-व्यञ्जना कवि की अपनी विशेषता है। भाषा के दो-एक उदाहरण देखिए :

रोवत नैन रकत कै धारा। टेसु फूलि बन मा रचनारा॥
काजर सहि बुँद जनु छुटा। आजहुँ स्याम रंग नहिं छुटा॥
गुल लाला घुँघची सुठि दुखी। डूबी रकत माह मैं मुखी॥
जौ सिंगार कोई बरबस करई। अनिल समान होइ सो जरई॥

यह 'पुहुपावती' का वियोग-वर्णन हुआ। अब उसके अधरों के सौन्दर्य-वर्णन में भाषा का रूप देखें :

अधर मधुर अति छीन सुरंगा। निरखत लज्जित होइ अनंगा॥
जहँ लगि जगत माह अरुनाई। सबन्ह वहि रँग लाली पाई॥
पान खात मुख पीक जो चुई। तेहिते बीर बहूटी हुई॥
सोइ रदन वदन तुअ लाभा। लोके बिजुली तेहि के आभा॥

इन पंक्तियों से भाषा-सौष्ठव का अनुमान हो जाता है। कवि ने भाषा के क्षेत्र में जायसी को अपना आदर्श माना है।

'नल चरित' के रचयिता कोटा-नरेश कुँवर मुकुन्दसिंह थे। इसका रचना-काल संवत् १७६८ है। 'नल चरित' की भाषा परिमार्जित, प्रवाह-युक्त और सुष्टु है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ हुआ है। कवि की भाषा में कहीं-कहीं संस्कृत के शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। संक्षेपतः भाषा लालित्यपूर्ण है। उदाहरणार्थ :

जंघ जुगल कुसता अति लहई। मरुथल के करली जनु अहई॥
जो करि ताकि तब कमल लजाई। भागि रहे जल मैं सो जाई॥
सोकर को अब कमल हसाई। किरहते अतिहि छीनहुति लसाई॥

'उषा चरित' के रचयिता जन कुञ्ज कवि थे। इस ग्रन्थ का रचना-काल सम्वत् १८३१ है। 'उषा चरित' की रचना अवधी में हुई है। कवि का वृत्यानुप्रास पर असाधारण अधिकार था और इस ग्रन्थ में पग-पग पर वृत्यानुप्रास की छटा दर्शनीय है। कवि विषयानुसार भाषा का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। देखिए उनका युद्ध-वर्णन कितना प्रभावशाली और उचित है :

हा हेहर हंकार कुस्न पर धाए। परलै मेघ बान बरसाए॥
धरि सर चाप कुस्न हंकारे। सिव के बान वृथा करि मारे॥

युद्ध-भूमि के एक बीभत्स दृश्य का वर्णन सुनिए :

भूत प्रेत जोगिनि इतरावै। भरि-भरि रुधिर ईस-गुन गावै॥
झूम मिलै करताल वजावै। जोगिनि भरि-भरि खप्पर धावै॥
जाबुक गीध गीधनी गन लावै। भरि-भरि उदर परम सुख पावै॥

कवि की भाषा की विशेषता है सरल और मधुर शब्दों का चयन, जो प्रति-ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता उपस्थित करने में सर्वथा समर्थ है। कवि की अवधी भाषा संस्कृत के शब्दों से प्रचुर प्रभावित है। उपमा अलंकार का प्रयोग कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। उसकी उपमाएँ परम्परागत होते हुए भी हृदयग्राही हैं।

'नल दमयन्ती चरित्र' की रचना सम्वत् १८५३ के पूर्व कवि सेवाराम ने की थी। इसका रचना-काल ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। इस ग्रन्थ की रचना भी अवधी में हुई। प्रेम-कथा के वर्णन के साथ ही कवि ने इसमें नीति और उपदेशों से सम्बन्धित छन्दों की भी पर्याप्त रचना की है। कवि की भाषा में अवधी के ग्रामीण और साहित्यिक रूपों का विचित्र समन्वय उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ :

पीपर पूजन निसिदिन कीनौ। तुम्ह कंथ बताइ न दीनौ॥
जौ असोक तुम नाम धराओ। करौ आज मेरौ मन भायौ॥

ग्रन्थ की भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

'उषा हरण' के रचयिता का नाम जीवनलाल नागर था। इसका रचना-काल सम्वत् १८८६ है। प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा में ओज तथा प्रसाद के साथ ही स्वाभाविकता, सरलता एवं प्रतिध्वन्यात्मकता उपलब्ध होती है। कवि के शब्द-चित्र सुन्दर और आकर्षक हैं। अलंकारों के प्रयोग से भाषा में प्रभावित करने की सराहनीय शक्ति का समावेश हो गया है। कवि ने प्रसंगानुसार भाषा और शब्दों का प्रयोग किया है। कवि की भाषा का एक उदाहरण निम्न लिखित है :

बरखत धरिनि धार धाराधर
कबहुँक मन्द कबहुँ बहुत जलधर।
गन्धित सीत चलत पुरवाई,
छित छकि रति लै स्वास सुहाई।
खल खलात चहुँ दिस नद नारे,
निर्झर भरे ढरत जल धारे।

उपर्युक्त उदाहरण में भाषा कितनी प्राञ्जल और परिष्कृत है।

'राजा चित्रमुकुट और रानी चन्द्रकिरन की कथा' नामक ग्रन्थ की भाषा चलती हुई अवधी है। कवि की भाषा से खड़ी बोली का विकसित रूप भी परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ :

जब फन्दा राजा ने खोला।

हंस आसिरवाद दे बोला ॥

कवि की इस रचना में 'दे बोला' खड़ी बोली का क्रिया पद है। इसके अतिरिक्त कवि की भाषा जायसी से बहुत-कुछ मिलती है। कवि की रचना से दो-एक उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं :

रैन भई अति ही अँधियारी। पिय बिन मानो नागिन कारी।
हाय हाय करि साँस लेवै। फिरि-फिरि दोस दई को देवै ॥

भावों को रसात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने में कवि अत्यन्त कुशल और सफल है।

राम-काव्य

उत्तरी भारत में रामानन्द (१४वीं शती) की प्रतिभा और महान् व्यक्तित्व के माध्यम से राम-भक्ति-भावना का प्रचार हुआ। साहित्य के क्षेत्र में श्रीराम के महत्त्व की स्थापना ईसा से ६०० वर्ष पूर्व आदिकवि वाल्मीकि अपनी रामायण में कर चुके थे। 'वाल्मीकि रामायण' की परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास से पूर्व सैकड़ों कवि हुए, जिनमें से आज हमें बहुतों की जानकारी भी नहीं रह गई है। वाल्मीकि के अनन्तर राम-भक्ति या राम-साहित्य के प्रति भारतीय जनता की अभिरुचि को जाग्रत करने का महत्त्वपूर्ण श्रेय रामानन्द ही को प्राप्त है। रामानन्द एक ऐसा महत्त्वपूर्ण उद्गम-स्थल है, जहाँ से राम-भक्ति-धारा की दो शाखाएँ प्रस्फुटित हुईं। इनमें से प्रथम धारा के उन्नायक कबीर और द्वितीय के तुलसीदास थे। एक धारा में निर्गुणो-पासक अवगाहन करके आनन्द-विभोर हो उठे और दूसरी में सगुण-ब्रह्मो-पासकों के हृदय को अभूतपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। तुलसीदास हिन्दी में राम-साहित्य के सबसे बड़े कवि हैं। उनकी रचनाओं के द्वारा राम-भक्ति का प्रचार चिरस्थायी जीवन का स्वरूप और साहित्य का एक विशिष्ट अंग बन गया। रामानन्द द्वारा प्रतिपादित दास्य-भाव-भक्ति को उन्होंने हृदयंगम किया और उन्हींके सिद्धान्तों को लेकर हमारे कवि ने राम-भक्ति-विषयक जिस काव्य की रचना की वह स्थायी बन गया। उनके 'रामचरितमानस' के माध्यम से राम-भक्ति की एक अबाध धारा प्रवाहित हुई, जो आज तक किसी-

न-किसी रूप में साहित्य के पृष्ठों में दृष्टिगत होती है। सच तो यह है कि राम-साहित्य की रचना में तुलसी का व्यक्तित्व इतना महान् प्रमाणित हुआ, उनका 'मानस' इतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि उनके परवर्ती कवियों की रचनाएँ चाहे कितनी ही कलात्मक क्यों न रही हों, पर वे फीकी प्रतीत होती हैं। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता, सरलता तथा माधुर्य किसी अंश तक राम-काव्य के प्रचार और प्रसार में बाधक सिद्ध हुए, परन्तु जो ख्याति या प्रसिद्धि तुलसीदास को केवल 'मानस' के आधार पर प्राप्त हुई वह अन्य कवियों को नसीब न हुई। मानव-जीवन के जितने व्यापक और उत्कृष्ट चित्रों को 'मानस' में व्यक्त किया गया है, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व या साहित्य धर्म, समाज, संस्कृति और राष्ट्र के लिए जितना भी उच्च और बहुमूल्य हो, उसके अतिरिक्त भाषा की दृष्टि से भी उनका विशेष महत्त्व है। गोस्वामी जी ने अवधी में काव्य-रचना की। अवधी में 'मानस' की रचना करके उन्होंने उसे उतना ही मधुर, सुसंस्कृत और परिष्कृत बना दिया जितना सूरदास ने व्रजभाषा में ग्रन्थ-रचना करके उसे मधुर और मनमोहक बना दिया था।

यहाँ पर गोस्वामी तुलसीदास की भाषा पर सविस्तर विचार कर लेना अपेक्षित प्रतीत होता है।

गोस्वामी जी की रचनाओं का भाषा की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजन सरलता के साथ हो सकता है। प्रथम है अवधी की रचनाएँ। इस वर्ग में 'रामचरित मानस' का उल्लेख प्रधान रूप से होना आवश्यक है। इस अमर कृति के अनन्तर 'बरवै रामायण', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'राम लला नहछू' और 'वैराग्य सन्दीपनी' का उल्लेख अपेक्षित है। द्वितीय वर्ग है व्रज भाषा की रचनाओं का। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना 'श्री कृष्ण गीतावली' है। इसके अनन्तर 'गीतावली', 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'दोहावली' का स्थान है।

इन बड़े-बड़े प्रमुख वर्गों के अतिरिक्त कवि की भाषा में उर्दू, फ़ारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला, गुजराती और राजस्थानी

आदि के शब्दों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। तुलसी की समन्वयवादी प्रकृति का परिचय उनकी भाषा से भी प्रकट हो जाता है। परन्तु तुलसी का पूरा-पूरा मन या ध्यान अवधी पर ही केन्द्रित था। उनकी प्रमुख कृतियों, उनकी ख्याति और कला के मुख्याधार-ग्रन्थों की रचना अवधी में ही हुई है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि अन्य विशेष (ब्रज भाषा में रचित) ग्रन्थ किसी प्रकार से उपेक्षणीय हैं।

कवि की अवधी-विषयक रचनाओं के तीन उपवर्ग स्थापित किये जा सकते हैं :

१. पूर्वी अवधी में विरचित ग्रन्थों का वर्ग।

२. पश्चिमी अवधी में लिखित ग्रन्थों का वर्ग।

३. बैसवाड़ी (अवधी) की कृतियों का वर्ग।

अब इन उपवर्गों की दृष्टि से कवि के ग्रन्थों का विभाजन और अध्ययन अपेक्षित है। पूर्वी अवधी में विरचित ग्रन्थों में 'राम लला नहछू' एवं 'बरवै रामायण' का उल्लेख आवश्यक है। पश्चिमी अवधी के वर्ग में 'रामाज्ञा-प्रश्न' एवं 'वैराग्य संदीपिनी' तथा बैसवाड़ी में 'राम चरित मानस', 'पार्वती-मंगल' और 'ज्ञानकी मंगल' का उल्लेख किया जाता है।

पूर्वी अवधी के व्याकरण-विषयक मुख्यतया दो लक्षण हैं। ये लक्षण हैं संज्ञा-शब्दों के साथ 'इया' एवं 'वा' का योग। इन उभय प्रत्ययों के प्रयोग करने से पूर्व शब्दों की ध्वनि को, जिस पर बलाघात होता है, दीर्घ से ह्रस्व कर दिया जाता है। यह विशेषता न तो बैसवाड़ी अवधी में है, न पश्चिमी अवधी में। उदाहरणार्थ कतिपय उद्धरण पठनीय हैं :

१. **चम्पक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।** (बरवै रामायण)

२. **कन गुरिया के मुँदरी कंकन होइ।**

३. **डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।**

४. **कटि हैं छीन बरिनिया छाता पानिहि हों।** (रामलला नहछू)

इन उद्धरणों में 'हरवा', 'कनगुरिया', 'उजियरिया', 'बरिनिया' आदि शब्द उपर्युक्त कथन के समर्थक हैं।

पश्चिमी अवधी अवधी के कुछ अधिक निकट है। इसमें ओकारान्त संज्ञाओं, क्रियाओं एवं विशेषणों की प्रधानता है। 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'वैराग्य संदीपिनी' से इसके कतिपय उदाहरण देना रोचक होगा :

१. सुदिन सोधि गुरु बेदविधि कियो राज-अभिषेक। (रामाज्ञा प्रश्न)

२. ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। (वैराग्य संदीपिनी)

३. दियो तिलक लंकेस कहि राम गरीब नेवाज। (रामाज्ञा प्रश्न)

यह उद्धरण हमारे उपर्युक्त कथन को सिद्ध करने में सहायक हैं।

गोस्वामी जी की अवधी भाषा सामान्यतया पाँच प्रकार की शब्दावली से प्रभावित है। हम इस व्यवहृत शब्दावली का विभाजन निम्न लिखित प्रकार से कर सकते हैं—

१. संस्कृत भाषा के शब्द तथा उसी के तत्सम शब्दों का समूह।

२. प्राकृत, पालि एवं अपभ्रंश आदि भाषाओं के शब्द।

३. विदेशी भाषाओं के तत्सम, अर्द्ध तत्सम एवं तद्भव शब्द।

४. देशज शब्द।

५. हिन्दी की बोलियों और उपबोलियों के शब्द।

अब इन समस्त वर्गों की विवेचना अपेक्षित है। सबसे पहले हम संस्कृत भाषा तथा उसके तत्सम शब्दों के प्रयोग पर विचार करेंगे।

गोस्वामी जी के ग्रन्थों में संस्कृत तथा उसके तत्सम शब्दों का प्रयोग बाहुल्य के साथ हुआ है। इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी को संस्कृत भाषा का सम्यक् ज्ञान था। 'रामचरित मानस' के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरणों, स्तुतियों तथा 'विनय पत्रिका' के पूर्वार्द्ध में आये हुए पदों में संस्कृत-शब्दों का बाहुल्य दर्शनीय है। इनसे कवि के संस्कृत-ज्ञान का समर्थन और पुष्टि होती है :

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं,
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघहरं ध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपुञ्जपाटन विधौ स्वेसम्भवं शंकरं,

वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥[1]

'मानस' में आई हुई एक स्तुति की भाषा देखें :

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपम् ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥

संस्कृत के शब्दों के प्रयोग का दूसरा रूप वह है जहाँ कवि ने संस्कृत के सरल शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर ये शब्द छन्द-पूर्ति में सहायक प्रतीत होते हैं। छन्दों में ऐसे शब्दों की संख्या या प्रतिशत किसी प्रकार कम नहीं है, परन्तु फिर भी सरल होने के कारण वे हिन्दी के निकट और मिलते-जुलते हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ कतिपय देखिए :

१. राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी।

२. अनघ, अविछिन्न, सर्वज्ञ, सर्वेश खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रणतजन-खेद-विच्छेद-विद्या-निपुण-नौमि श्रीराम सौमित्रिसाकं ॥
युगल पद पद्म सुखसद्म पद्मालयं, चिह्न कुलिसादि शोभाति भारी।
हनुमंत-हृदि विमल कृत परममंदिर, सदा दास तुलसी शरण-शोकहारी ॥[2]

इन दोनों उद्धरणों में हिन्दी-संस्कृत के मिश्रित शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें से अधिकांश शब्द ऐसे हैं जो सामान्य ज्ञान वाले व्यक्ति की समझ से बाहर हैं।

कवि की भाषा में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों का प्रयोग सीमित रूप में हुआ है। ये शब्द विशेष संज्ञाओं, क्रिया-पदों, एवं विशेषणों तक ही सीमित हैं। इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग में तत्सम्बन्धी व्याकरणिक नियमों का परिपालन नहीं हुआ है। इन शब्दों के प्रयोग के पीछे कवि की कोई विशेष अभिरुचि नहीं प्रतीत होती, जैसा कि संस्कृत की शब्दावली के प्रति सर्वत्र प्रकट होता है। गोस्वामी जी की भाषा में प्राकृत एवं अपभ्रंशादि भाषाओं के रूप कई प्रकार से उपलब्ध होते हैं। इनमें से प्रथम

---

१. 'रामचरित मानस', आरण्य काण्ड, १।

२. 'विनय-पत्रिका', ५१—६।

वह स्थल है जहाँ पर कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किसी विशेष रस अथवा भाव की वृद्धि के लिए किया है। वीर, रौद्र, एवं भयानक रसों में इस प्रकार के शब्दों का विशेष प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ :

१. जंबुक निकट कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुवाहिं अघाहिं दपट्टहिं॥

२. बोलहिं जो जय जय मुण्ड रुण्ड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥

दूसरे स्थल वे हैं जहाँ पर कवि ने इन शब्दों का प्रयोग छन्द-शुद्धि और तुकान्तता के लिए किया है। तीसरे स्थल वे हैं जहाँ कवि ने इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग कुतूहल-सृष्टि के लिए किया है। उनके प्रस्तुत कथन का समर्थन निम्न लिखित पंक्तियों से होता है :

कोटिन रुण्ड मुण्ड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय-जय बोल्लहिं॥

कवि की अवधी भाषा पर फारसी, अरबी, तुरकी आदि भाषाओं का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग कवि ने बड़े स्वाभाविक और मनमाने रूप में किया है। इनके प्रयोग से भाषा में सुन्दर प्रवाह आ गया है। 'रामचरित मानस' में ऐसे शब्दों का व्यापक प्रयोग हुआ है। 'गरीबनेवाज', 'साहब', 'जहान', 'कागज', 'बखशीश', 'गरदन', 'शोर', 'गुमान', 'गरूर', 'हवाले', 'रुख', 'माफी', 'दिल' आदि शब्दों का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। इन विदेशी शब्दों का कवि ने हिन्दी के व्याकरणिक नियमानुसार प्रयोग किया है।

कवि ने प्रान्तीय भाषाओं के अत्यन्त प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। गोस्वामी जी पर्यटनशील होने के साथ ही व्यापक अध्ययनशील व्यक्ति थे। अतः प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। उनकी अवधी भाषा में राजस्थानी, गुजराती, बंगला और मराठी के शब्दों का यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। यहाँ पर कतिपय उद्धरण देना असंगत न होगा :

क. *राजस्थानी*

१- दास तुलसी समय वदति मयनन्दिनी

मंद मति कंत सुनु मंत म्हाको। (कवितावली)

२. जातहि राम तिलक तेहि सारा। (गीतावली)

ख. गुजराती

१. काहू न इन्ह समान फल लाघे।

२. पालो तेरो टूक को, परेहुँ चूक भूकिए न।

ग. बंगला

१. जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा।

२. सोक बिवस कछु कहै न पारा।

यहाँ पर स्थानाभाव के कारण केवल कतिपय उदाहरणों से ही सन्तोष करना पड़ता है। 'कवितावली', 'गीतावली', 'मानस' आदि से इनके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

अवधी गोस्वामी जी की सर्वाधिक प्रिय भाषा थी। इसीलिए उन्होंने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना अवधी में ही की थी। अवधी में काव्य-ग्रन्थों की रचना करते समय कवि की दृष्टि अवधी के व्याकरणिक प्रयोगों और भाषा-विषयक प्रमुख प्रवृत्तियों पर बराबर बनी रही है। व्याकरण की शुद्धता की दृष्टि से कवि ने अवधी की शब्दावली का बड़ी सतर्कता के साथ प्रयोग किया है। यहाँ पर अवधी की प्रयुक्त शब्दावली के विषय में विचार कर लेना अपेक्षित प्रतीत होता है—

१. अवधी में संज्ञा के दो रूप ह्रस्व तथा दीर्घ रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त संज्ञा का एक और रूप उपलब्ध होता है; यथा—'घोड़ा', 'घोड़वा' और 'घोड़ौना'। इनमें से गोस्वामी जी के काव्य में संज्ञा का प्रथम रूप तो मिलता है, शेष दो का प्रयोग अल्प मात्रा में हुआ है। प्रथम प्रकार की संज्ञा के कतिपय उदाहरण निम्न लिखित हैं :

१. गंग सकल मुद मंगल मूला।

२. लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।

२. अवधी में 'न्ह' प्रत्यय के योग से विकारी बहु वचन रूपों का निर्माण होता है। इस प्रकार के उदाहरण गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रचुरता

के साथ मिलते हैं :

गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बये ।

३. अवधी में प्रायः संज्ञाओं एवं विशेषणों के अकारान्त रूपों का उकारान्त रूपों में प्रयोग होता है । इस प्रकार के प्रयोग गोस्वामी जी के साहित्य में बराबर हुए हैं :

प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ।

४. अवधी में कर्ता कारक 'ने' का प्रयोग सामान्यतया नहीं होता । गोस्वामी जी की भाषा में भी इसका सर्वथा अभाव है :

राम कहा सबु कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ।

५. अवधी में 'के', 'कर', एवं 'केर' आदि सम्बन्ध-कारकों का प्रयोग बहुलता के साथ होता है । गोस्वामी जी के काव्य में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध होंगे :

१. माय बाप गुरु स्वामि राम कर नाम ।

२. गंगा जल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हौं ।

६. अवधी में सर्वनामों के सम्बन्ध-कारक रूप 'तोर', 'मोर', 'तुम्हार', 'हमार', 'केहिकर', 'जाकर', 'ताकर' आदि का प्रयोग होता है। गोस्वामी जी की भाषा में और विशेषकर 'मानस' में इस प्रकार के प्रयोग निरन्तर हुए हैं ।

७. अवधी में भूतकालिक सहायक क्रिया के रूपों में लिंग, वचन और पुरुष के कारण विभिन्नता रहती है । अवधी-व्याकरण के इन सामान्य नियमों का परिपालन 'मानस' और कवि की अन्य रचनाओं में बराबर हुआ है । उदाहरणार्थ :

१. मंगल सिरोमन में प्रहलादू ।

२. सो कुचालि कब कहँ भइ नीकी ।

३. तेहि के भये जुगल सुत वीरा ।

४. अपनी समुझि साधु सुचि को भा ।

८. अवधी में संयुक्त क्रियाओं की रचना का प्रचलन है। उदाहरणार्थ, 'कहै लाग', 'सुनै लाग', 'नहान लाग', 'रहै लाग' । इस प्रकार की संयुक्त

क्रियाओं का प्रयोग कवि की रचनाओं में भी हुआ है।

९. अवधी में भविष्यत् काल के अधिकांश रूप धातु के साथ 'ब' प्रत्यय के संयोग से बनाये जाते हैं। उदाहरणार्थ—'कहब', 'जाब', 'देब' आदि। इस प्रकार के प्रयोग 'मानस' में विशेष रूप से हुए हैं।

१०. अवधी में मूल धातु के साथ 'अइया' का प्रयोग करके कर्तृवाचक संज्ञाओं के रूपों की रचना होती है। कवि ने 'लुटैया', 'सुनैया', 'कहैया', 'बसैया', 'रहैया', 'जितैया' आदि शब्दों का प्रयोग 'कवितावली', 'गीतावली' और 'मानस' में बार-बार किया है।

इन कतिपय उदाहरणों से प्रकट हो जाता है कि गोस्वामी जी की अवधी भाषा और शब्दावली व्याकरण-सम्मत है। अवधी भाषा और व्याकरण की प्रायः सभी विशेषताएँ कवि की भाषा में विद्यमान हैं। कवि ने अवधी-व्याकरण के अतिरिक्त अवधी की कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का भी बड़ी कुशलता के साथ अपनी भाषा में प्रयोग किया है।

स्वामी अग्रदास—गोस्वामी तुलसीदास के अनन्तर अवधी में राम-काव्य की रचना करने वाले कवियों में इनका नाम भी उल्लेखनीय है। ये तुलसीदास के समकालीन 'भक्तमाल' के लेखक नाभादास के गुरु थे। इनका आविर्भाव-काल संवत् १६३२ माना गया है। अवधी में राम-चरित से सम्बन्धित इनके जो दो ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं उनमें प्रथम है 'कुण्डलिया रामायण' और द्वितीय 'ध्यान मंजरी'। दूसरे ग्रन्थ में राम और उनके अन्य भाइयों के रूप, लावण्य, सरयू तथा अयोध्या के सौंदर्य का अच्छा वर्णन हुआ है। स्वामी अग्रदास के बाद 'भक्तमाल' के प्रसिद्ध लेखक *नाभादास* का उल्लेख हुआ है। इनका समय सम्वत् १६५७ माना जाता है। इन्होंने राम-भक्ति और रामोपासना से सम्बन्धित सुन्दर पदों की रचना की है।

अवधी के अन्य कवियों में *लालदास, रामप्रिया शरण, जानकी रसिक शरण, रामचरण दास, मधुसूदनदास, कृपानिवास, ललकदास, जानकी चरण, शिवानन्द* आदि उल्लेखनीय हैं। लालदास बरले के निवासी थे। इन्होंने अयोध्या में रहकर श्री सीता और राम की लीलाओं

का ललित वर्णन 'अवध विलास' में किया है। इनका समय सम्वत् १७०० माना गया है। रामप्रिया शरण का समय १७६० विक्रमी है। ये जनकपुर के महन्त थे। इनके ग्रन्थ 'सीतायन' की रचना अवधी में हुई है। इस ग्रन्थ में सीता जी और उनकी सखियों के चरित्रों का वर्णन हुआ है। साथ ही राम का चरित्र भी वर्णित हो गया है। जानकी रसिक शरण का आविर्भाव-काल सम्वत् १७६० है। 'अवधी सागर' में कवि ने श्रीराम तथा सीता जी के चरित्र का सरस और मनोहर ढंग से वर्णन किया है। राम चरणदास जी अयोध्या के महन्त थे। राम-चरित्र से सम्बन्धित इनके ग्रन्थ हैं—'कविता-वली रामायण' और 'राम-चरित्र'। इनमें राम-नाम-महिमा, राम-चरित्र और माहात्म्य का वर्णन किया है। मधुसूदन दास का समय सं० १८३९ है। कवि ने 'मानस' के आदर्श पर दोहा-चौपाई में राम के चरित्र का वर्णन 'रामाश्वमेध' ग्रन्थ में किया है। रचना सुन्दर और भाषा परिमार्जित है। कृपा-निवास जी का समय सं० १८४३ और निवास-स्थान अयोध्या है। ये रामो-पासक थे, पर एक ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की लीलाओं का भी वर्णन किया है। 'भावना पच्चीसी', 'समय प्रबन्ध', 'माधुरी प्रकाश', 'जानकी सहस्रनाम', 'लगन पच्चीसी' आदि राम-चरित-विषयक इनके ग्रन्थ हैं। ललकदास का आविर्भाव-समय १८७० वि० है। ये लखनऊ के निवासी और अवधी में राम-काव्य के अच्छे लेखक थे। जानकी चरण का समय सं० १८७७ माना गया है। 'प्रेम प्रधान' और 'सियारामरस मंजरी' इनके राम-चरित्र पर प्रकाश डालने वाले दो काव्य-ग्रन्थ हैं, जिनकी रचना अवधी में हुई है।

राम-काव्य की परम्पराएँ बड़ी महान् हैं। इस परम्परा में सैकड़ों कवियों का जन्म हुआ। इन कवियों में अधिकांश ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम अवधी रखा, और शेष ने व्रजभाषा।

रहीम—अकबरी दरबार के सुप्रसिद्ध कवि रहीम का जन्म-काल सम्वत् १६१३ है। ये तुर्कमन जाति के बैरमखाँ खानखाना के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम महबानू था। इनकी मृत्यु फाल्गुन सम्वत् १६८३ में हुई। रहीम बड़े उदार-हृदय और लोकप्रिय कवि थे। कितने ही कवियों ने उनकी दान-

शीलता की प्रशंसा अपने काव्य में की है।[1] इनके अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। जिनमें 'रहिमन विलास', 'रहिमन विनोद', 'रहिमन कवितावली' विशेष उल्लेखनीय हैं। रहीम अवधी के प्रसिद्ध कवि थे। 'बरवै नायिका-भेद' इनकी अवधी की रचना है। इस ग्रन्थ से कवि की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उदाहरण के रूप में उद्धृत करना असंगत न होगा :

१. लागेउ आन नवेलि अहिं मनसिज बान।
उकसनु लागु उरुजवा दृग तिरछान॥
२. सेत कुसुम कै हरवा भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिया पिय के हेत॥
३. बालम अस मन मिलयउँ जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि।
एक घरी भरि सजनी रहु चुपचाप।
सघन कुञ्ज अमरैया सीतल छाँहि।
झगरति आइ कोइलिया पुनि उड़ि जाँहि॥
लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया विथुरे बार॥

रहीम गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन कवि थे। परन्तु दोनों की अवधी में बड़ा अन्तर है। इन उद्धरणों में 'उरुजवा', 'उजिअरिया', 'मिलयउ', 'सवतिया', 'अमरैया' और 'कोइलिया' अवधी के ठेठ शब्द हैं। इनका प्रयोग अपढ़ और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक होता है। रहीम की भाषा में माधुर्य है।

कृष्ण काव्य

कृष्ण-काव्य की रचना पूर्ण रूप से व्रजभाषा में हुई है। उत्तरी भारत में कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित अनेक सम्प्रदायों की स्थापना हुई, जिनमें निम्बार्क-सम्प्रदाय, चैतन्य-सम्प्रदाय, वल्लभ-सम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय और हरिदासी सम्प्रदाय विशेष प्रसिद्ध हैं। इन उपर्युक्त सम्प्रदायों

---

१. 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि', पृष्ठ १४२।

में ही सैकड़ों की संख्या में एक-से-एक बढ़कर प्रतिभावान कवि हुए, परन्तु इन कवियों ने केवल व्रजभाषा में ही काव्य-ग्रन्थों की रचना की। कृष्ण-काव्य में पद्य के साथ ही गद्य-रचनाएँ भी पर्याप्त हुईं। पद्य की तरह गद्य भी व्रज की बोल-चाल की भाषा में लिखा गया। कृष्ण-काव्य की भाषा एक-मात्र व्रज होने के कारण साहित्य के विकास की धारा में एक महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। एक ही भाषा के द्वारा अनेक रचनाएँ हुईं। इसीलिए उसमें परिमार्जन और परिष्कार के लिए भी कवियों को यथेष्ट समय प्राप्त हो सका। भाषा-सौष्ठव, और परिमार्जनप्रियता के कारण कृष्ण-काव्य को बड़ा आघात पहुँचा। कालान्तर में वह अनुभूति, साधना व श्रद्धा की वस्तु न रहकर केवल कलाबाजी, शब्द-चातुर्य और रसिकता की वस्तु-मात्र ही रह गई।

रीति-काल
(१७००-१९००)

समय की गति का चक्र सदैव अपने वेग से चलायमान रहता है। भारतवर्ष की जो परिस्थिति भक्ति-काल में थी, वह रीति-काल के आरम्भ तक बहुत परिवर्तित हो गई। भय ने प्रेम का स्थान ग्रहण किया। असहिष्णुता ने सहिष्णुता को जन्म दिया। धार्मिक विरोध ने एकता के लिए स्थान सुसज्जित कर दिया। जाति और वर्ण-भेद के काले रंगों के बीच मुसलमानों के हृदयों में भी एक विशेष परिवर्तन समुपस्थित हुआ। उन्होंने अपने विरोधी हिन्दुओं से तलवारें लड़ाने के बजाय हृदय मिलाना अधिक उपयुक्त और उपादेय समझा। जायसी और कुतबन इत्यादि प्रेम-काव्य के लेखकों के लक्ष्यों की पूर्ति होने लगी। हिन्दू जनता और यवन-सम्राट् आक्रमणों के भय से विमुक्त हो गए। उनका निश्चित मस्तिष्क और हृदय कला की ओर स्वयमेव आकृष्ट होने लगा।

रस-रंग और नृत्य में संलग्न सम्राटों की रुचि का प्रभाव जनता पर पड़े बिना कैसे रह सकता था? जनता भी उन्हींके रंग में रँग गई। **'यथा राजा तथा प्रजा'** कहावत पूर्णरूपेण चरितार्थ हुई। प्रजा भी यवनों के

विलासमय रंग में रँग गई। इस सभ्यता और बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव कवियों पर पड़े बिना न रह सका। कवियों के भावुक कण्ठों से भी वही गान फूटे जो जनता अनुभव कर रही थी। राज-दरबारों में आश्रय पाने के कारण उन्हें अपनी सरस्वती (वाणी) को उसी प्रकार नचाना पड़ता था जिस प्रकार उनका आश्रयदाता चाहता था।

रीति-काल के उदय-काल तक भक्तों के कण्ठ से निःसृत उपदेश प्रभाव-हीन हो चले थे। कबीर और जायसी ने जिस लक्ष्य के पीछे इतना परिश्रम तथा उद्योग किया था वह राजाओं की दुधारी नीति के कारण स्वयमेव पूर्ण हो चला था। यवन-सम्राटों ने तलवार से देश पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् हृदयों पर भी विजय प्राप्त की।

औरंगज़ेब की कट्टु तथा असहिष्णु प्रकृति के कारण हिन्दुओं में एक बार पुनः धार्मिक विचारों का उत्थान हुआ। चिरकाल से पद-दलित तथा विमर्दित हिन्दू जनता ने पुनः होश सँभाला। ठीक इसी समय हिन्दू जाति के गौरव वीर महाराज शिवाजी ने बीजापुर, गोलकुण्डा तथा दिल्ली को विमर्दित करके महाराष्ट्र राज्य स्थापित किया। इस समय महाराजा जसवन्त-सिंह ने हिन्दूपन के भाव को जाग्रत करके मुसलमानों की सेवा करते हुए भी अनेक बार औरंगज़ेब को पराजित किया और वीर-केसरी महाराज शिवाजी से मिलकर शाइस्ताख़ाँ की दुर्गति करा डाली। इस समय महाराणा राजसिंह ने यवनों की अधीनता अस्वीकृत करके छः बार रण-स्थल में औरंगज़ेब को अपमानित तथा पराजित किया। इसी समय महाराज जस-वन्तसिंह के निधन हो जाने पर वीर बाँकुरे राठौरों ने प्रायः लम्बे ३० वर्षों तक यवनों से युद्ध किया और युवराज अजीतसिंह तथा सारे मारवाड़ देश की रक्षा की। इस समय यवन-सिंहासन को हिला देने के लिए और औरंग-ज़ेब के कुत्सित हृदय को दहला देने के लिए वीर छत्रसाल ने केवल ५ सवारों और २५ पैदलों के सहारे विजय प्राप्त की थी। इसी समय हिन्दू जनता के मान, धर्म और व्यक्तित्व की रक्षा करने के हेतु चम्पतराय ने जन्म लेकर पतनोन्मुख समस्त बुन्देलखण्ड को उत्साहित किया और वीरोचित

कार्य करने के हेतु उसे और भी शक्तिशाली बनाया। इसी समय शौर्य-मूर्ति बाला जी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने यवन-साम्राज्य को तहस-नहस करके भारत में ५०० वर्षों से विस्मृत आर्य-भावनाओं को एक बार पुनः जाग्रत किया था।

इस प्रकार हमारे समस्त रीति-काल में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होती हैं। प्रथम कोटि में चाटुकारिता-प्रिय जनता आती है, जिसका लक्ष्य अपने सम्राट् को प्रसन्न रखना-मात्र था। इस कोटि की जनता के कारण देश में विशेष शान्ति और आलस्य फैला रहा। और दूसरी कोटि की जनता में उसकी गणना होती है, जो औरंगजेब-जैसे संकीर्ण हृदय व्यक्ति के सतत विमुख और विरोधी बने रहे।

रीति-काल में दो प्रकार की विचार-धाराएँ जनता में अविरल रूप से प्रवाहित हुईं। एक विचार-धारा राज-दरबार-सेवियों के हृदय से निःसृत हुई और दूसरी त्रस्त जनता के हृदय से। प्रथम विचार-धारा का आधार शृङ्गार और शान्ति था और दूसरी विचार-धारा का आधार-क्षेत्र प्रति-कार और विद्रोह-भावना थी।

रीतिकालीन कवियों में जिस प्रकार दो भेद हो गए थे उसी प्रकार जनता में भी दो भेद हो गए थे। कुछ कवि दरबार का आश्रय ग्रहण करके कविता के क्षेत्र में अवतरित हुए और उन्होंने अपने पाण्डित्य का उपयोग केवल नायिकाओं के हाव-भाव के चित्रण में किया और कुछ कवियों ने पीड़ित जनता के करुण स्वरों को सुनकर पद-दलित हिन्दुओं को प्रोत्सा-हित करना ही अपने जीवन का चरम कर्त्तव्य समझा।

भक्ति-काल में भक्ति-प्रधान भावों की ही अभिव्यञ्जना हुई। भक्ति-काल में कबीर, सूर, तुलसी, नन्ददास तथा इसी प्रकार के अनेक कवि हुए जिनके निष्काम हृदय से निःसृत सुन्दर भाव अभिव्यक्त होकर साहित्य में अमर हो गए। इन महात्माओं के हृदय से निकले उपदेशों में कल्याण की अपूर्व भावना निहित थी। उस कल्याण की भावना में इतनी सजीवता थी कि सहस्रों पतनोन्मुख भारतीयों को उससे सद्भविष्य का आभास मिला और उन्हें

ढाढ़स हुआ। आशा ने उनके जीवन की विशृङ्खलता को शान्त कर दिया। भक्त-कवियों की अनुभूति तथा उदारता के कारण अनेक महान् आदर्शों की स्थापना हुई, जो न केवल धर्म से ही सम्बन्धित थे वरन् लौकिक जीवन से भी निकटतम थे। इन्हीं सब बातों के कारण वे सन्त तथा महात्मा आज भी उतने ही व्यापक तथा मान्य हैं जितने अपने समय में प्रतिभाशाली थे। उन भक्त कवियों में महत्त्वाकांक्षा शून्य के बराबर थी। वास्तव में विनय और परोपकार की भावना उनमें इतनी अधिक थी कि उनकी अहम् भावना प्रायः लुप्त-सी हो गई थी। इस नाशवान् संसार के नगण्य लोभ तथा भ्रम उनके लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित नहीं कर सकते थे। लोक में रहते हुए भी उनमें अलौकिक भावनाओं का प्राधान्य था। बाह्याडम्बर को वे इतना हेय समझते थे कि उसे उन्होंने अपनी वाणी में भी स्थान नहीं दिया था। जो भी बात वे कहना चाहते थे बड़ी निर्भीकता तथा स्पष्ट हृदय से कहते थे। उनकी आत्मा का सन्देश बाह्याडम्बर से परिवृत नहीं था। उनकी रचना का विषय लोक-कल्याण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता था। प्रकृत-जन-गुण-गान को वे सरस्वती का अपमान और तिरस्कार समझते थे।

काव्य-रचना करने पर भी उन्हें अपने महत्त्व और उच्च आसन का लेश-मात्र भी गर्व न था। **"कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहौं लिखि कागद कोरे"** के लेखक महाकवि गोस्वामी तुलसीदास में कितनी विनय की भावना भरी थी। वास्तव में यही भावना सभी भक्त-सन्त-कवियों में वर्तमान थी।

भक्ति-काल में रचित साहित्य शब्द-जाल से शून्य है। उसमें अनावश्यक अलंकारों का अभाव है। हाँ, स्वाभाविक रूप से आये हुए अलंकारों की उन्होंने अवहेलना भी नहीं की। इस काल के सृजित काव्य में सत्य तथा कल्याणकारी भावों की अभिव्यक्ति-मात्र है। उसमें बाह्य शृङ्गार लाने का प्रयत्न नहीं किया गया।

वीर तथा भक्ति-काल में अबाध रूप से साहित्य-सृजन हुआ। इन दोनों कालों में 'रामचरित मानस' तथा 'सूर सागर'-जैसे अमर काव्य-ग्रन्थों

की रचना हुई। परन्तु इन दोनों युगों में रीति-ग्रन्थों का अभाव था। उन समयों में लक्षण-ग्रन्थों के नाम पर एक भी पुस्तक की रचना उपलब्ध नहीं होती। परन्तु इसमें आश्चर्य और खेद का कोई विषय नहीं है। विश्व के प्रत्येक साहित्य का यही नियम है कि पहले लक्ष्य-ग्रन्थों की रचना होती है, तत्पश्चात् लक्षण-ग्रन्थों का लेखन-कार्य प्रारम्भ होता है।

रीति-काल के प्रारम्भ तक काव्य-भाण्डार अनेक बहुमूल्य रत्नों से जटित हो चुका था। अतः स्वभावतः रीति-काल के विद्वानों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने की ओर आकृष्ट हुआ। संस्कृत के रीति-ग्रन्थों का आदर्श उनके समक्ष उपस्थित था। भक्ति-काल में भी ऐसे अनेक कवि हो गए थे जिन्हें भाषा और भावों की ओर विशेष रूप से ध्यान रखना रुचिकर था; परन्तु जिन्होंने अलंकारों और बाह्य सौंदर्य को गौण स्थान दिया, प्रधान नहीं। उन्हें साहित्य में कलावाद वहीं तक प्रिय था जहाँ तक उसकी उपयोगिता है। परन्तु रीतिकालीन कवियों के लक्ष्य में महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। रीति-काल के कवियों के लिए अलंकार सहायक का कार्य नहीं वरन् स्वामी का कार्य करते हैं। उन्हें काव्य-कला ही प्रधान वस्तु प्रतीत हुई, शेष आवश्यक तत्त्व गौण। रीतिकालीन काव्य पर एक सरसरी निगाह दौड़ाने के पश्चात् पाठकों के मस्तिष्क पर यह अमिट छाप पड़ती है कि उस काल में काव्य की रचना कला की अभिव्यक्ति के लिए ही हुई। कला ने जिस प्रकार चाहा कवियों को घुमाया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के कवियों के लिए नवीन भावों का कोई विशेष महत्त्व नहीं था।

रीति-काल के उद्भव के अनेक कारण और भी हैं। उन सभी कारणों में सर्वप्रथम कारण तो यह था कि रीतिकालीन कवियों के कानों में कृष्ण-भक्त कवियों के रसमय शृंगार से ओत-प्रोत गान गुञ्जरित हो रहे थे। कृष्ण-भक्ति-परम्परा के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम को इतने प्रखर रंग में रँग डाला था कि उसमें से भक्ति-भावना का सर्वथा अभाव हो गया था। विद्यापति-जैसे भक्तों की नायिका राधा के चित्र ने ही रीति-काल के कवियों

को नायिका-भेद लिखने की ओर प्रेरित किया होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। कृष्ण और राधा का नाम हटा देने से विद्यापति की कविता को कोई भी पाठक रीतिकालीन रचना कह सकता है। फिर भला अनुकूल वातावरण पाकर रीति-काल के कवि अपने हाथ से अवसर क्यों जाने देते ? उन्होंने अपने आश्रयदाताओं के रंग-भवन के विलासमय वातावरण को देखकर अवश्य ही अपने को उसीके अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया होगा। रीतिकालीन कविता में शृङ्गार-रसमयी झाँकी के ही दर्शन होते हैं अन्य रूप अन्तर्हित-से हो गए थे।

हमारे साहित्य में रीति-ग्रन्थों की रचना के पूर्व संस्कृत में रस-सम्प्रदाय, अलंकार-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय, तथा ध्वनि-सम्प्रदाय का निर्माण हो चुका था। वास्तव में हिन्दी-रीति-ग्रन्थों की रचना संस्कृत के इन्हीं उपर्युक्त सम्प्रदायों के आधार पर हुई। संस्कृत के इन सम्प्रदायों की सहायता भाषा-कविता में यहाँ तक ली गई है कि उसे संस्कृती-रीति-ग्रन्थों की नकल ही कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। हिन्दी में रस, ध्वनि तथा अलंकार-सम्प्रदायों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। आचार्य केशवदास ने अलंकार-सम्प्रदाय का अनुकरण किया था।

विगत पृष्ठों से यह प्रकट हो जाता है कि वीर-गाथा-काल में काव्य-भाषा राजस्थानी डिंगल थी। भक्ति-काल में काव्य-भाषा प्रधान रूप से अवधी और व्रज थी। प्रेमाख्यानकारों की भाषा ग्रामीण अवधी थी। सन्त-काव्य की भाषा का रूप अधिक व्यवस्थित और निश्चित नहीं था। उनकी भाषा पर प्रायः सभी बोलियों के प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। लेकिन खड़ी बोली का विकासमान रूप पूरे सन्त-काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। अवधी और व्रजभाषा पर समान रूप से अधिकार रखने वाला केवल एक ही महाकवि हुआ है और वे थे गोस्वामी जी। अब रीति-काल की भाषा का परीक्षण करें। रीति-काल में कवियों की भाषा बहुत अंश तक रीतिग्रस्त बन गई। कवियों ने कठिन, कर्कश, कर्ण-कटु शब्दों का सर्वथा बहिष्कार करके कोमल-कान्त-पदावली और शब्दावली के चयन में ही अपने कौशल

और पटुता का प्रदर्शन किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कितने ही अप्रयुक्त और अप्रचलित शब्दों को खोज-खोजकर निकाला और उनके साथ भाँति-भाँति के ललित प्रयोग किये। रीति-कवियों के द्वारा संस्थापित इस परम्परा का परिपालन उनके समकालीन और परवर्ती कवियों ने बराबर किया। रीति-कवियों के साहित्य की यह ब्रजभाषा ब्रज-प्रदेश में बोली जाने वाली ब्रजभाषा से बहुत-कुछ भिन्न है। रीतिकारों का ध्यान भाषा की सुकुमारता, कोमलता तथा मधुरता पर तो रहा, परन्तु उन्होंने उसकी शुद्धता के प्रति ध्यान नहीं दिया। भाषा-शास्त्र और व्याकरण की दृष्टि से उसे शुद्धता प्रदान करने का प्रयत्न रीति-काल के २०० वर्षों में कहीं भी तो नहीं दृष्टिगत होता। सच तो यह है कि ये सभी कवि अत्यधिक भावुक, सहृदय और कलाप्रिय थे। वे काव्य के अन्तरंग के बनाव-सिंगार में ही लगे रहे। भाषा की ओर उनका जो-कुछ ध्यान गया वह केवल कोमलता लाने के लिए। आचार्य शुक्ल जी के मत से **"रीति-काल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति होनी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युति-संस्कृति-दोष का निवारण होता, जो ब्रज-भाषा-काव्य में थोड़ा-बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य-दोषों का ही पूर्ण रूप से निरूपण होता, जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती। बहुत थोड़े कवि ऐसे मिलते हैं जिनकी वाक्य-रचना सुव्यवस्थित पाई जाती है। यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों के प्रयोग पर जोर दिया जाता तो शब्दों को तोड़-मरोड़-कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता। पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था न हुई, जिससे भाषा में बहुत-कुछ गड़बड़ी बनी रही।"** जिस बात का न पूर्ण होना आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में अभाव बना रहा वही डॉ० श्यामसुन्दरदास के मतानुसार उसे निर्जीवता से बचाने का सबसे बड़ा अमोघ अस्त्र था। डॉ० दास के शब्दों में **"भाषा को जटिल**

बन्धनों से जकड़कर उसे निर्जीव कर देने की जो शैली संस्कृत ने ग्रहण की थी हिन्दी उससे बची रही। यही कारण है कि रीति-काल में कवियों की भाषा बहुत-कुछ बँधी हुई होने पर भी बाहरी शब्दों को ग्रहण करने की स्वतन्त्रता रखती थी। भाषा को जीवित रखने के लिए यह क्रम परम आवश्यक था। इस स्वतन्त्रता के परिणामस्वरूप अवधी और ब्रज का जो थोड़ा-बहुत सम्मिश्रण होता रहा, वह रीति-काल के अनेक प्रतिबन्धों के रहते हुए भी बहुत आवश्यक था, क्योंकि उनकी स्वतन्त्रता के बिना काम भी नहीं चल सकता था।"

रीति-काल की भाषा यद्यपि ब्रज ही थी परन्तु उस पर अवधी का प्रभाव भी प्रचुर मात्रा में पड़ा। इस सम्मिश्रण से भी भाषा का वह रूप कदापि नहीं बना जो सन्त-काव्य में विविध भाषाओं के सम्मिश्रण से हमारे सामने आया। रीति-कवियों का अधिकतर विकास अवध प्रदेश में हुआ था, और इसीलिए उनकी भाषा पर अवधी का स्वाभाविक प्रभाव दृष्टिगत होता है। उस युग के कवि भाषा के इस रूप से अनभिज्ञ नहीं थे। कविवर दास ने 'काव्य-निर्णय' में अपने समय की भाषा को लक्ष्य में रखकर कहा था कि :

ब्रज भाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ॥
ब्रज मागधी मिलै अगर, नाग यवन माखानि।
सहज पारसीहू मिलै, षट् विधि कहत बखानि॥

'दास' जी मिली-जुली भाषा के समर्थक थे। अपने इस मत को बल देने के लिए वे तुलसी और गंग की भाषा से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। दास जी के मत से :

तुलसी गंग दुवौ भए, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार॥

इस दोहे को पढ़ जाने के अनन्तर रीतिकालीन काव्य-भाषा के आदर्श के सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने का अवसर नहीं रह जाता है। 'दास' का यह

मत कई सौ वर्षों की काव्य-भाषा एवं परम्पराओं के पर्यालोचन के अनन्तर निर्धारित हुआ था। विविध भाषाओं के शब्दों से युक्त एवं सम्पन्न भाषा को ही उन्होंने वास्तविक काव्य-भाषा माना है। परन्तु यहाँ समस्या केवल विविध भाषाओं के शब्दों के प्रयोग तक ही सीमित नहीं थी। रीतिकालीन कवियों ने कारक-चिह्नों और क्रियाओं के रूपों के प्रयोग में भी बड़ी शिथिलता दिखाई। यह मनमाना प्रयोग या व्यवहार प्रायः सभी कवियों में उपलब्ध होता है।

रीति-काल की काव्य-भाषा व्रज होते हुए भी अन्य बोलियों के शब्दों, कारकों और क्रिया-पदों से प्रभावित है।

आधुनिक काल : भारतेन्दु युग

१८५० वि० तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी-काव्य-धारा में एक अभिनव परिवर्तन समुपस्थित हो गया। रीति-काव्य का वह वृक्ष, जिसे २०० वर्ष पूर्व आचार्य केशवदास ने बड़े परिश्रम के साथ लगाया और प्रतिभा-जल से सिंचित किया था, देव एवं बिहारी के उत्कर्ष और आविर्भाव से प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ, परन्तु पद्माकर और प्रतापसाहि आदि के विकास-काल तक वह प्रायः सूख चला था। रीति-काव्य के पूरे दो सौ वर्षों के इतिहास में कवियों की चमत्कारप्रियता और कलाप्रियता (या कलाबाज़ी) के कारण भाषा और साहित्य की धारा में महान् परिवर्तन हो गया। कवि-समाज अलंकारों के पीछे बुरी तरह व्याकुल प्रतीत होता है। रीति के संकीर्ण वातावरण से बाहर निकलने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं दिखाई देता। आचार्यत्व और कवित्व के मिश्रण ने **"ऐसी खिचड़ी पकाई जो स्वादिष्ट होने पर भी हितकर न हुई।"** आचार्यत्व के फेर में केशवदास कठिन काव्य के प्रेत बन गए और भिखारीदास-जैसे कवि भी संस्कृत-कवियों और आचार्यों की प्रतिभा भीख में पाकर भी उसे पचा न सके। दो सौ वर्षों में भूषण के अतिरिक्त एक भी ऐसा कवि न हुआ जो रीति की पुरानी लीक को छोड़कर **"लीक छाँड़ि तीनों चलैं, सायर, सिंह, सपूत"** को सार्थक करता। वास्तव में रीति-रचयिताओं का सबसे बड़ा लक्ष्य या ध्येय साहित्य-शास्त्र

का सम्यक् निरूपण न होकर काव्य-लेखन या काव्य-निर्माण की प्रतिभा और शक्ति का प्रदर्शन-मात्र था। इसी हेतु बहुत-से कवि आलोचक का स्वाँग बनाए हुए दिखाई देते हैं। इन आलोचकाभासी कवियों की रचनाओं से साहित्य-शास्त्र का ज्ञान भी पूर्णतया नहीं हो पाता। रीति-काव्य में धार्मिकता का बाना पहने हुए लौकिक या भौतिक प्रेम और ऐन्द्रिकता अभिव्यक्त हुई है। इस तथाकथित धार्मिक कविता में भावानुभूति की सच्ची अभिव्यक्ति का नितान्त अभाव है। वर्णित प्रेम पर वासना का रंग प्रगाढ़ है। मौलिकता और नवीनता का इस युग में सर्वथा अभाव है; इसीलिए इस काव्य में विविधता और अनेकरूपता के दर्शन नहीं होते। रूढ़ि ने इस समय के कवियों की सर्वतोमुखी भावना को कुण्ठित कर डाला और प्रकृति तो सर्वथा बहिष्कृत-सी पड़ी रही। उसमें सामयिकता का अभाव है। तत्कालीन राजनीतिक षड्यन्त्रों, विद्रोहों, उत्पातों एवं अकालों से व्यथित जनता की भावनाओं से रीति-काल के कवि प्रभावित न हुए।

काव्य का यह स्वरूप और स्थिति अधिक समय तक न ठहर सकी। राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने के साथ-ही-साथ साहित्य के रूप में भी क्रान्ति समाविष्ट हुई। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह ने जागरण का सन्देश सुनाया। नवजीवन, नवजागृति और नवचेतना की लहर के साथ ही समाज-सुधार की भावना का भी प्रसार हुआ। *राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, दादा भाई नौरोजी* प्रभृति मनस्वियों के प्रयत्न से राजनीतिक, साम्प्रदायिक और सामाजिक क्षेत्रों में जागरण के लक्षण दृष्टिगत हुए। भारतेन्दु ने साहित्यिक प्रगति का बीजारोपण किया। हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में इस नव प्रभात और जागरण के सर्वप्रथम वैतालिक भारतेन्दु जी थे। सन् १९०० ई० तक उनका प्रभाव बड़े व्यापक रूप में परिलक्षित होता है। उत्साह, स्फूर्ति एवं प्रेरणा के तो मानो वे स्रोत ही थे।

भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में भारतवर्ष के अतीत, विगत वैभव एवं गौरव के चित्रों को अंकित करके जनता को प्राचीन इतिहास और समृद्धि की ओर उन्मुख किया। इनकी रचनाओं से

उसमें छाई हुई हीनता की भावना छँटने लगी और देश-वासियों ने अब अपने को गर्हित समझना बन्द कर दिया। इनकी सामाजिक कविता ने जनता के सामने समाजगत उपयुक्त मनोदृष्टि उपस्थिति की और साथ ही इनकी राजनीतिक कविता ने भी उसमें अच्छी राजनीतिक चेतना जाग्रत की। अन्त में ये केवल जनता में फैली हुई हीनता की भावना के निराकरण में ही सफल नहीं हुए, प्रत्युत इन्होंने देशवासियों के हृदय में आत्म-सम्मान की भावना की अवतारणा की। इस प्रकार देशवासियों के चित्त से आत्म-हीनता की मनोवृत्ति को निकाल बाहर करने का सम्पूर्ण श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों को है।[1]

भारतेन्दु-युग के साहित्य में दो भाषाओं का राज्य दिखाई देता है। उस समय की काव्य-भाषा ब्रज-भाषा थी और गद्य-भाषा खड़ी बोली थी। खड़ी बोली में कविता लिखने की प्रवृत्ति भी उस समय दृष्टिगत होती थी। अधिकांश लावनियों की रचना खड़ी बोली में है और कभी-कभी एक ही कविता में खड़ी बोली और ब्रज-भाषा दोनों की ही एक साथ छटा दिखाई देती है। भाषा के शोधन और परिष्कार की ओर भी इनका ध्यान कम नहीं था। इनके द्वारा रूढ़, प्रभावहीन और अप्रयुक्त शब्दों का बहिष्कार किया गया। राजा लक्ष्मणसिंह, लाकि राम (भट्ट), गोविन्द गिल्लाभाई, नवनीत चौबे, अम्बिकादत्त व्यास, भारतेन्दु, ठाकुर जगमोहनसिंह, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', श्रीधर पाठक, 'प्रेमघन', बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि इस समय के ब्रज-भाषा के कवि थे। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली की छटा भी इनके काव्य को सुशोभित कर रही है। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, 'प्रेमघन,' बालकृष्ण भट्ट, नज़ीर अकबराबादी, श्रीधर पाठक आदि ने खड़ी बोली में भी काव्य लिखा।

अवधी की ओर से इस युग के प्रमुख और प्रसिद्ध कवि प्रायः पूर्ण रूप से विमुख रहे। अपवाद के रूप में केवल एक प्रतापनारायण मिश्र ऐसे कवि थे जिन्होंने खड़ी बोली तथा ब्रज-भाषा में लिखने के साथ-साथ अवधी

---

१. **'आधुनिक काव्य-धारा', पृष्ठ २९।**

तथा बैसवाड़ी में भी पर्याप्त कविता की। ग्रामीण भाषा की सराहना करते हुए उन्होंने 'ब्राह्मण' में 'आल्हा से अहलाद' शीर्षक में लिखा था कि "कानपुर, फतेहपुर, बाँदा, फर्रुखाबाद के जिले की ग्राम्य-भाषा स्वभावतः ऐसी मधुर होती है कि वह ब्रज-भाषा की कविता में मिला देने से खड़ी बोली की तरह नीरस नहीं जँचती।"[1]

मिश्रजी की बैसवाड़ी में लिखित एक रचना देखिए :

गैया माता तुम काँ सुमिरौं कीरत सबते बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै पुरिखन बैतरनी देउ तारि॥
तुम्हरे दूध-दही की महिमा जाने देव-पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगे पवित्तर होय॥

'बुढ़ापा' शीर्षक रचना में शब्दों और भाषा का रूप देखें :

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन।
करत-धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जाउँ और कैस करन॥
दिन-भर चटक छिनै या मद्धिम जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखवस देखि परत है हमरी अक्किल के लच्छन॥
अस कुछु उतरि जाति है जी ते बाजी बिरियाँ बाजी बात।
कैसेउ सुधि ही नाहीं आवत मूड़इ काहेन दै मारन॥

पं० प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त भारतेन्दु-युग में अवधी के माध्यम से काव्य-रचना करने वालों में अन्य अनेक कवि हुए, परन्तु उनकी रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आईं। इन कवियों की संख्या सौ से किसी प्रकार भी कम न होगी। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, शुकदेव मिश्र (डौंडियाखेरा), सर्वंश शुक्ल (विहगपुर), शिवसिंह सेंगर (कांथा), जगन्नाथ अवस्थी (सुमेरपुर), भवन कवि (बेंती), बादेराय (डलमऊ), भवानीप्रसाद पाठक भावन (मौरावाँ), मिहीलाल 'मिलिन्द' (डलमऊ), गिरिधारी (सातनपुर), शम्भुनाथ मिश्र (खजूरगाँव), चिरंजीव, महानन्द वाजपेयी, पंचम (डलमऊ), गंगादयालु द्विवेदी (निगसर),

---

१. खण्ड २ संख्या ५।

गुणाकर त्रिपाठी (कांथा), कालीचरण वाजपेयी (विगदपुर), मून्रूकवि (असोकर), सुन्दर कवि (असनी), शिवलाल दुबे (डौडियाखेरा), धीरदास, प्राणनाथ, खुशाल, बेनीमाधव, ईश्वरीप्रसाद, वंशीधर, कालीदीन, मनीराम, जानकीप्रसाद, शिवराम, दुलारे, दयाल, छत्रपति सिंह, मौन, ज्वालाराय, परमेश, पंचम, रघुराजसिंह, गंगादयाल, शम्भुनाथ, गिरधारी, विश्वनाथ, मिहीलाल, हरिप्रसाद, माधो, माधव, कन्हैयाबख्श, आनन्दी दीन, जगन्नाथ, परमात्मादीन, बच्चूलाल, सुखराम, शिवरत्न मिश्र, कामताप्रसाद आदि।

इन कवियों के अतिरिक्त अवधी में काव्य-रचना करने वालों की सूची अभी काफी बृहत् है। उपर्युक्त सभी लेखक अवध-प्रदेश के बैसवाड़ा भू-खण्ड के निवासी थे, अतः इनके लिए अवधी में काव्य-रचना करना बड़ा स्वाभाविक था।

बैसवाड़े के इन अवधी-कवियों का इतिहास के रूप में एक बृहत् वृत्तान्त उन्नाव जिले के मौरावाँ ग्राम के निवासी श्री प्रेमनारायण दीक्षित एम० ए० एल-एल० बी० तैयार कर रहे थे, किन्तु दुर्भाग्यवश सन् १९४५ में उनका स्वर्गवास हो गया। इस इतिहास में उनके पश्चात् के प्रायः डेढ़ सौ ऐसे कवियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिनसे हमारे साहित्य के इतिहासकार सर्वथा अनभिज्ञ थे। निकट भविष्य में उसके प्रकाशन का आयोजन हो रहा है।

द्वितीय उत्थान : द्विवेदी-युग
(१९००–२५)

सन् १९०० तक भारतेन्दु-युगीन काव्यादर्श समाप्त हो चले थे। प्राचीन परिधान में काव्यात्मा के नवीन स्वरूप को व्यक्त करने की प्रणाली भी इसीके साथ अस्त हो गई। भारतेन्दु-युग के अन्तिम वर्षों में ही काव्य-लेखन के प्राचीन माध्यम (व्रजभाषा) का विरोध होने लगा। विरोध की भावना का सूत्रपात करने वालों की दृष्टि में साहित्य के क्षेत्र में दो भाषाओं का उपयोग समीचीन नहीं था। वे गद्य और पद्य के लिए एक ही भाषा को उपयुक्त समझते थे। स्पष्ट है कि इनके अनुसार व्रजभाषा को

हटाकर खड़ी बोली को उसका स्थानापन्न बनाना ही समय की सबसे बड़ी माँग थी। इस विषय को लेकर साहित्यिकों में बड़ा विवाद और मतभेद हुआ। श्रीधर पाठक, राधाचरण गोस्वामी तथा प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति विद्वानों ने इस वाद-विवाद में भाग लिया। सन् १६०० में 'सरस्वती' की स्थापना के साथ ही ब्रजभाषा का पक्ष निर्बल पड़ गया। खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का साहित्य के क्षेत्र में पूर्ण रूप से उत्तराधिकार ग्रहण किया। यहीं से द्वितीय उत्थान प्रारम्भ हुआ। खड़ी बोली को काव्य की भाषा का स्वरूप देने और बनाने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का बड़ा हाथ रहा। इन्होंने खड़ी बोली की शिथिलता दूर की, उसमें दृढ़ता का समावेश किया और लेखकों को व्याकरण-सम्मत एवं मुहावरेदार प्रवाहयुक्त भाषा लिखना सिखाया। इस नवीन परिवर्तन के कारण नवीन काव्य में कल्पना एवं सांकेतिकता का अभाव प्रतीत होने लगा। काव्य में वह सरसता न रही जो ब्रजभाषा में सर्वत्र लहरें ले रही थी।

खड़ी बोली इस समय की काव्य-भाषा रही। मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर, हरिऔध, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, राय कृष्णदास, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,' गोपालशरणसिंह, विश्वनाथ विद्यार्थी, रूपनारायण पाण्डेय, बालमुकुन्द गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल आदि इस युग के खड़ी बोली के प्रसिद्ध काव्य-रचयिता हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इस युग के अवधी-काव्य-रचयिताओं का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु तथ्य तो यह है कि इस युग में भी अवधी के ऐसे दर्जनों कवि हुए हैं जिनका साहित्य प्राप्य न होने के कारण हमारे साहित्यिक और इतिहासकार उनसे परिचित नहीं थे। इस युग में अवधी के निम्नलिखित प्रमुख कवि हुए—

ज्वालाप्रसाद, शिवरत्न मिश्र, महरानी, गंगाप्रसाद, हरितालिका-

प्रसाद, अजदत्त, अम्बिकाप्रसाद, बैजनाथ, राममनोहर, ललिताप्रसाद, माधवप्रसाद, जयगोविन्द, गुरुप्रसाद, इन्द्रदत्त, गयाचरण, रघुवंश तथा प्रयागदत्त-आदि। इन कवियों में से अधिकांश ने स्फुट काव्य की रचना की। शेष कुछ ने ग्रन्थों की भी रचना की है।

इस प्रकार काव्य की भूमि में अवधी भाषा की धारा किसी-न-किसी रूप में प्रवहमान रही। यद्यपि इनमें से कोई विशेष प्रतिभावान कवि नहीं हुआ तथापि इनको इस बात का श्रेय प्राप्त है कि इनके कारण अवधी की धारा कहीं विलीन नहीं होने पाई।

तृतीय उत्थान
(१६२५-१६५३)

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके समकालीन कलाकारों के युग में अवधी के प्रति हिन्दी-भाषी जनता का ध्यान बहुत ही कम गया। भाषा-विषयक जो आदर्श भारतेन्दु-युग में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र स्थापित कर गए थे, उस परम्परा का शायद ही कोई एक कवि इस युग में अवतरित हुआ हो। फिर भी अवधी-काव्य की यह धारा कहीं विलीन या सूख नहीं गई। 'सुकवि काव्य कलाधर' आदि पत्रों में छोटे-मोटे कवि अवधी में समस्या-पूर्ति कर लिया करते थे। तृतीय उत्थान में कवियों का दृष्टिकोण अवधी की ओर फिर बदला। उनकी अभिरुचि गाँवों की जनता, गाँवों के वातावरण, गाँवों के गीतों और गाँवों की भाषा की ओर जा पहुँची। राजनीतिक जागरण का पूरा-पूरा प्रभाव इस समय के कवियों पर दृष्टिगत होता है। इन्होंने गाँवों में रहने वाली भारतीय जनता के ८० प्रतिशत निवासियों के लिए उनकी ही भाषा में जागरण के गीत सुनाने का व्रत लिया। यह बड़ा ही मनोवैज्ञानिक और सहानुभूतिपूर्ण प्रयास था, जिसका जनता पर कल्याण-कारी प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था, और उनका यह लक्ष्य या व्रत पूरा होता हुआ भी दिखाई पड़ा। इस उत्थान के कवियों की मनोदृष्टि में परि-वर्तन हो गया और इसीलिए उनकी रचना में काव्य-विषयों की नूतनता भी परिलक्षित होती है। यह परिवर्तन और नूतनता राजनीतिक आदर्शों

में परिवर्तन हो जाने के कारण और भी अधिक खुलकर सामने आई।

वर्तमान युग (तृतीय उत्थान) की काव्य-धारा में अवधी के कवि स्वतन्त्र रूप से भावाभिव्यञ्जना में संलग्न दृष्टिगत होते हैं। इस युग के कवि अधिक स्वच्छन्दतावादी प्रतीत होते हैं और उनकी इसी मनोदृष्टि ने काव्य को रूढ़ियों से उन्मुक्त कर दिया। कवियों ने क्या भाव, क्या भाषा, क्या छन्द, क्या रस सभी दृष्टियों से नये-नये प्रयोग किये। इन कवियों का ध्यान मुक्तक की ओर विशेष रूप से गया। इस समय के मुक्तक गीतों का कलेवर भावातिरेक की स्थिति से परिवेष्टित है। इस समय शब्द-शोधन और शैली में भी स्वतन्त्रता परिलक्षित होती है। इन्होंने काव्य-भाषा की संगीतात्मकता की ओर भी ध्यान दिया। सन् १९२५ से अब तक अवधी के कवियों का साहित्य इस बात का प्रमाण है कि इन कलाकारों को मनोनुकूल अभिव्यक्ति के लिए पूर्णतया स्वतन्त्रता प्राप्त होते हुए भी इनका ध्यान शब्द-शोधन और शब्द-चयन की ओर समुचित रीति से रहा है। ये कवि शब्दों के कुशल और प्रभावोत्पादक प्रयोग से पूर्णतया परिचित हैं। इन कवियों में हम सर्व श्री 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल और 'रमई काका' (देहाती) का नाम सरलता के साथ ले सकते हैं। इन तीनों कवियों ने किसी शब्द का प्रयोग केवल इसीलिए नहीं किया कि वह अवधी का अपना शब्द है या वह काव्यमय है, वरन् इसलिए कि वह शब्द भाव-वहन में पूर्णरूपेण समर्थ है। यही कारण है कि उनके काव्य में भाषा के नैसर्गिक विकास के दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं में अवधी-प्रदेश के अन्तर्गत प्रयुक्त और प्रचलित मुहावरों का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ हुआ है।

इस युग में वर्तमान खड़ी बोली-काव्य-साहित्य का भी अवधी-काव्य-साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। खड़ी बोली के प्रतीकात्मक काव्य की रचना और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों के आधार पर अवधी में भी प्रचुर रचना हुई। इस प्रकार के काव्य-रचयिताओं में भी 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल और देहाती का नाम उल्लेखनीय है। कवियों के ये प्रतीक-सम्बन्धी प्रयोग भाव-वहन में समर्थ होने के साथ-साथ चमत्कार उत्पन्न करने में भी सफल हैं।

इस युग में अवधी-कवियों का ध्यान सौंदर्याभिव्यक्ति की ओर भी गया। परन्तु यह सौंदर्य रीतिकालीन कवियों द्वारा वर्णित नायिकाओं का सौंदर्य नहीं है। यह सीधी-सादी ग्रामीण प्रकृति के सरल और मनमोहक सौंदर्य का वर्णन है। इसके अन्तर्गत कवियों का ध्यान कभी-कभी बुभुक्षित, कृश और शोषित प्राणियों की ओर भी गया है। इन कवियों ने अनेक बार उन नारियों के सौन्दर्य का भी वर्णन किया, जो आधा पेट खाना खाकर, आधी धोती पहनकर दिन-भर खेतों में काम करती हैं। जिनकी आँखें धँस गई हैं, मुख म्लान हो गया है, ऐसे नर-नारी भी हमारे कवियों के ध्यान को आकर्षित करने में समर्थ हुए हैं।

प्रकृति-वर्णन और चित्रण की विभिन्न शैलियाँ कवियों के प्रकृति-प्रेम और संवेदनशील हृदय का ज्ञापन करती हैं। प्रायः प्रकृति के सुन्दर वर्णनों में हमें उज्ज्वल भविष्य का संकेत भी मिल जाता है।

स्वर्गीय पं० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस'—स्वर्गीय पं० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' वर्तमान अवधी के युग-प्रवर्त्तक कवि थे। द्विवेदी-युग के अवसान-काल से ही उन्होंने अवधी भाषा के माध्यम से काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी और इस प्रकार हम उन्हें अवधी के नव-विकास का सर्वप्रथम वैतालिक कह सकते हैं। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के अनन्तर अवधी-काव्य के क्षेत्र में प्रतिभा, काव्य-शक्ति और भाषा की दृष्टि से 'पढ़ीस' जी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कवि सिद्ध होते हैं। 'पढ़ीस' जी किसान थे और उन्होंने अपनी कविताएँ किसान बनकर ही लिखी थीं। उनकी कविताओं में १९३० ई० के विद्रोही किसान की आवाज बिलकुल स्पष्ट रूप से प्रतिश्रुत होती है। भारतीय किसान की पीठ पर गाँव का चौकीदार, लेखपाल, महाजन और तहसीलदार लदे हैं, मानो चूहे की पीठ पर पहाड़ लदा हो। किसान सभी तकलीफ़ों को सहन करके भी हँसना नहीं भूलता और यही बात 'पढ़ीस' जी में वर्तमान थी। काव्य में उनकी हँसी व्यंग के रूप में प्रस्फुटित हुई है। उनके हृदय पर भारतीय गाँवों के चित्र अंकित थे और किसानों का दर्द समाया हुआ था। इन्हीं बातों ने

उन्हें विद्रोही बना दिया। काव्य, कहानी, निबन्ध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी यह भावना मूर्त्त प्रतीत होती है। वे युग-धर्म के पक्के हिमायती थे।

'पढ़ीस' जी की कला का आधार है 'सत्यं, शिवं, सुन्दम्'। पन्त का प्रकृति-निरूपण, प्रसाद का गांभीर्य, निराला की विद्रोही तथा सत्यं भावना, अकबर इलाहाबादी का व्यंग-कुतूहल आदि सभी 'पढ़ीस' के कृतित्व और व्यक्तित्व में समाहित हैं।

'पढ़ीस' जी की भाषा सीतापुरी अवधी है। भाषा के स्वाभाविक रूप को सुरक्षित रखने के वे बड़े समर्थक थे, इसीलिए उनकी कविता में तत्सम शब्दों के प्रयोग बहुत कम मिलते हैं। जो इस प्रकार के शब्द प्रयुक्त भी हुए हैं उनका उच्चारण देहाती जबान के उपयुक्त ही है: **"दीक्षितजी को अवधी के शब्द-माधुर्य की वैसी ही परख थी, जैसी किसी महान् कवि को हो सकती है। उनकी रचना 'तुलसीदास' का एक-एक शब्द मधुर है, सम्पूर्ण कविता मानो 'रामचरितमानस' में डूबकर निखर उठी है। प्रकृति-वर्णन में वह ताज़गी है जो अवध की घनी अमराइयों में पपीहे और कोयल की बोली में होती है और जो पिंजरे में बन्द मैना की बोली में सुलभ नहीं होती। उनकी कविताओं में वही आनन्द है जो खेत-खलिहानों में घूमने वाले को खुली हवा लगने से प्राप्त होता है। बर्न्स की तरह 'पढ़ीस' जी ने भी प्रतिदिन की घटनाओं पर कविताएँ लिखी हैं।"[1]**

'पढ़ीस' जी का काव्य कहीं पर प्राकृतिक सौंदर्य और सहज स्वाभाविकता की गोद में थिरकता हुआ दीख पड़ता है, तो कहीं मनोहर मार्दव पाठक के हृदय में मिश्री घोल जाता है। इसी प्रकार यदि हृदय कभी व्यंग्य के कुतूहल से मुग्ध हो उठता है तो कभी स्नेह की मृदुलता एवं दार्शनिक भाव-गम्यता मानव-मन को माधुर्य के गहन सिन्धु में बार-बार डुबो देती है।

पढ़े-लिखे नवयुवकों पर कवि का व्यंग पठनीय है। अँग्रेजी शिक्षा का दुष्प्रभाव कवि की आँखों में काफी अच्छी तरह चुभा है। तभी ये व्यंग-

१. डॉक्टर रामविलास शर्मा।

बाण उसके हृदय-तरकस से निकल पड़े हैं :

बलिहार भयन हम उइ ब्यरिया,
तुम याक बिलाइति पास किह्यउ,
अभिलाखइ खुब खुब पूरि गईं
जब याक बिलाइति पास किह्यउ ।
बजरा का बिरवा तुम भूल्यउ
का आइ कर्याला तुम पूँछ्यउ,
छगरी का भेंड़ी कइसि कह्यउ,
जब याक बिलाइति पास किह्यउ ।
बिल्लाइ मेहरिया बिलखि-बिलखि,
साथ की बँदरिया निरखि निरखि,
यह गरे म हड्डी तुम बाँध्यउ,
जब याक बिलाइत पास किह्यउ ॥
हम चितईं तुमका भुलुह भुलुए,
मलिकिनी निहारयूँ भुकुरि-भुकुरि,
तुम मुँहि माँ सिरकुटु दावि चल्यउ,
जब याक बिलाइति पास किह्यउ ।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की विशेषताओं पर तो कवि का एक व्यंग पठनीय है । इन पक्तियों में कान्यकुब्जों की झूठी प्रतिष्ठा और निराधार मान-मर्यादा पर कवि का व्यंगाघात दर्शनीय है :

मरजाद पूरि बीसउ बिसुआ,
हम कनउजिया बामन आहिन ।
दुलहिनी तीनि लरिका त्यारह,
सब भिच्छा भवन ति पेटु भरइँ,
घर मा मूस डंडइ प्यालइँ
हम कनउजिया बामन आहिन ।
बिटिया बइठी बत्तिस की,

पोती बर्स अठारह की झलकी,
मरजाद क झंडा झूलि रहा,
हम कनउजिया बाँमन आहिन ।

'सोभानाली' शीर्षक कविता में पारिवारिक जीवन पर कवि का एक व्यंग देखिए :

लरिकउनू आए दफ़्दर ते, दुलहिनि अँगरेजी बूँकि चली ।
घरवारु गिरिहती चउपट कह दुलहिनि अँगरेजी बूँकि चली ।
पीठी गठरी पोथिन की दुइ चारि रजहटर काँधे पर,
कढ़िलति कचरति घर का पहुँचे, दुलहनि अँगरेजी बूँकि चली ।
बाँठन मा लाली मुहियाँ पाउडर, मुलु देही हइ पियर-पियर,
ब्वालइ माँ ड्वालइँ उगर-मगर, दुलहिनि अँगरेजी बूँकि चली ।
उइ कहिन तनुकु पानी देतिउ, तब बोली कपरा फीचि लिह्यन,
पकवानु रहा सो खुद खाइन, दुलहिनि अँगरेजी बूँकि चली ।

हास्य के साथ ही हमारा कवि अवधी में गम्भीर काव्य लिखने में भी सिद्ध है । 'मनई' कविता में आपने मानव की यथातथ्य एवं आदर्श व्याख्या की है :

जो जानइ कइसे जलमु लिह्यन, अब का करबइ फिरि कहाँ जाब ।
जो द्याखइ हम तुमको आही, बसि वहइ आइ सुन्दर मनई ॥
दुसरे के दुख ते दुखी होइ, अपनउ सुखु सबका बाँटि देइ ।
जो जानइ सुख-दुख के किरला, बसि वहइ आइ सुन्दर मनई ॥
अउरन की बिटिया महतारी जो अपनिन ते अधकी मानइ ।
जग के सब लरिका अपनइ अस बसि वहइ आइ सुन्दर मनई ॥

मानव की दुर्बलताओं को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त करने में 'पढ़ीस' जी कुशल हैं । समाज के शोषित वर्ग का चित्रण 'चरवाहु', 'फिरियाद', 'घसियारिन', 'धरमकच्चारु' आदि उनकी कविताओं में बड़े समारोह के साथ हुआ है । 'पढ़ीस' जी ने शब्द-चित्रों की अभिव्यक्ति भी बड़ी सफलतापूर्वक की है । देहाती लड़की का चित्र देखिए । कितना स्पष्ट है :

फूले काँसन ते ख्यालइ, घुँघवारे बार मुँहु चूमइँ
बछिया बछरा दुलरावइ, सब खिलि खिलि-खुलि खुलि ख्यालइँ।
बारू के ढूहा ऊपर परभातु अइस कसि फूली।
पसु-पंछी भोहे भोहे जंगलु माँ मंगलु गावइँ।
बरसाइ सनउ गुनु चितवइ कँगला किसान की बिटिया।

पं० वंशीधर शुक्ल—श्रीयुत वंशीधर शुक्ल वर्तमान अवधी के तीन महान् कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अवधी-काव्य के युग-प्रवर्त्तक कवि 'पढ़ीस' जी आपकी काव्य-प्रतिभा से अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित थे। स्वर्गीय 'पढ़ीस' जी इनसे कहा करते थे कि **"भैया अवधी माँ कविता तौ तुम ही करति हौ। सुरुआत हम जरूर कीन, लेकिन वह बात कहाँ है जौनि तुम्हरी रचना मंहिया है।"** शुक्लजी को 'पढ़ीस' जी के साथ ऑल इण्डिया रेडियो में हिन्दी के स्वरूप की रक्षा करने, विशुद्ध हिन्दी का प्रचार करने, उर्दू के प्रभाव से उसे बचाने और अवधी को स्थापित करने में अनेक संघर्षों और विरोधों का सामना करना पड़ा। रेडियो में रहकर इन दोनों विभूतियों ने अनेक प्रतिभाशाली नवयुवकों को अवधी का कवि बना दिया। आप लोगों की लेखनी ने सिद्ध कर दिया कि अवधी में भी काव्य, नाटक, कहानी और फ़ीचर लिखे जा सकते हैं। शुक्लजी को अपनी उग्र राष्ट्रीय विचार-धारा के कारण रेडियो से सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ा और इसी कारण आपको प्रायः दस बार कारावास का दण्ड भी मिला। अवधी-काव्य में भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से जितने प्रयोग आपने किये हैं, उतने किसी अन्य कवि ने नहीं किये। गाँव की प्रकृति, ग्रामीणों की मनोवृत्ति, पशु-पक्षियों की प्रकृति आदि का कवि ने अपने काव्य में बड़ी कुशलता के साथ वर्णन में किया है। हास्य और व्यंग्य लिखने में आज के युग का वह अद्वितीय कवि है। अपनी स्पष्टोक्तियों के कारण कांग्रेसी श्रीमानों का कोप-भाजन वह अनेक बार बना है। कितनी चेतावनी, कितने ही दण्ड और कितने ही आघात उस पर हुए, परन्तु उसकी गरदन नीची न हुई, उसकी लेखनी कभी मौन न हुई। वह विद्रोह की प्रतिमूर्ति है, जन्म

जात आलोचक है। उसकी तीव्र दृष्टि से समाज, व्यक्ति, राष्ट्र, देश, शासन और धर्म के दोष किसी प्रकार भी नहीं छिप पाते। वह कवि के धर्म का अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न करता है।

हमारा कवि एक शोषित कलाकार है। उसकी कितनी ही ग्रन्थों के रूप में संग्रहीत रचनाएँ साहित्यिक चोर उड़ा ले गए। कितनी ही रचनाएँ सम्पादकों की मेज़ों में रखी कीड़ों की खाद्य-सामग्री बन गईं। अवधी के कवियों में जितना उन्होंने लिखा है उतना बहुत कम कवियों को लिखने का सौभाग्य मिला है, पर पारिश्रमिक का मुँह उसने कभी नहीं ताका।

शुक्ल जी के चार काव्य-संग्रह पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास प्रायः दस वर्षों से प्रकाशन के हेतु पड़े हैं। एक काव्य-संग्रह सन्त-सम्मेलन, सीतापुर में किसी सन्त द्वारा चुरा लिया गया। शुक्ल जी ने अवधी की प्रायः ४५० पहेलियों, १०० लोक-कहानियों, ५०० लोक-गीतों और ४५०० अवधी के शब्दों का संग्रह किया है। न जाने यह रत्नागार प्रकाशित रूप में हिन्दी के पाठकों को कब उपलब्ध होगा।

कवि का जन्म-सम्वत् १९६१ वि० और जन्म-स्थान मन्यौरा जिला लखीमपुर है। कवि की एक व्यंगात्मक कविता यहाँ उद्धृत की जाती है। शीर्षक है 'म्यूज़िक-कान्फ्रेंस':

कक्कू हम सुनेन पण्डितन ते संगीतौ बेदै के समान।
मोहन आकर्षन बसी करन, रामौं रीझैं सुनि मधुर तान॥
दुखिया दुख भूलै गीत सुनै सुखिया सुखु भूलैं गीत सुनै।
हरहा गोरू चिरइउ नाचैं, फुलबगियौ फूलैं गीत सुनै॥
सोचेन दुनियाँ का तार-तार गाना गावै सुर-ताल भरा।
मुल सही रूप रागिनी क्यार अबबलौं हम का ना समुझि परा॥
मुँह मेहरा एक कहिसि हमसे लखनऊ माँ खुला मदरसा है।
जेहि माँ असिली रागिनी रागु रोजुइ खेलैं नौदरसा है॥
आचार्य सिखावैं देवी सीखैं लरिका और लरिकिउ सीखैं।
बी० ए०, एम० ए०, बाबू, बीबी, भाड़ौं सीखैं, रंडिउ सीखैं॥

हम पता लगायेन मालुम भा अब जल्सा सालाना होई।
जेहि माँ मशहूर गवैयन का ऊँचा-ऊँचा गाना होई ॥
सोचेन सबते बढ़िया मौका चलि परेन रेल पर टिकसु लिहेन।
सब राति जागतै बीति भोरहरी राति लखनऊ पहुँचि गयेन ॥
देखेन कुर्सिन पर बैठ शहरुवा पंजाबी कोइ बंगाली।
कोइ दरिहल कोई सफाचट्ट बोचलैं पिये आँखी लाली ॥
मेहरारू बैठी मनइंन माँ दुबरी-सुथरी छोटी-मोटी।
कोइ भाँटा कोइ टिमाटर असि कोइ बिसकुट कोइ डबल रोटी ॥
देखेन आगे के तखतन पर बैठी बनि-ठनिकै चन्द्रमुखी।
ना जानि सकेन को घर वाली ना जानेन को मंगलामुखी ॥
रोंवा रोंवा अंगरेजी रंगु काँधे धोती हाथे चुरवा।
कुछु के तौ हाथ पाँव करिया, मुल मुँह चीकन मुरवा-मुरवा ॥
फिरि याक पुकारिल मुन्नु मुन्नु अब रामकली गाई जाई।
बजि उठा तम्बूरा धुन्नु धुन्नु सुर भरै लगी शीलाबाई ॥
हम दूरि रहन खसकति खसकति जब बहुत नंगीच पहुँचि आयेन।
औ साँस बाँधि कै सुनै लगेन तब कुछ-कुछ बोलु समुझि पायेन ॥
फिरि याक परी गावै बैठी, चिकनी चमकीली चटकदार।
जबहे रेंहकी तम्बूर पकरि मानौं गर्दभ सुर पर सवार ॥
फिरि याक नजाकति चेंहकि उठे, धींचौं मरोरि मुँह मटकाइनि।
सें सें रें रें में में पें पें उइ बड़ी मसक्कति ते गाइनि ॥
फिरि नाचु भवा शम्भू जी का उइ नस-नस देंही फरकाइनि।
अपने नैनन वैनन सैनन ते, काम कलोलैं समुझाइनि ॥
सुकुमारी ही-ही करति जायँ सुकुमारी सी-सी करति जायँ।
सी-सी ही-ही के बीच मजे की खूब निगाहैं लड़ति जायँ ॥
जेहिका नारदु योगी गाइनि श्रीकृष्ण व्यास शंकर गाइनि।
वहिकर ई मेहरा छुवै चले जेहिका विरलै त्यागी पाइनि ॥
हम आँखि बनाये पथरीली कालिज की लीला तकति रहेन।

उइ जो कछु अंट-संट बक्किनि सबु मनु मुरझाये सुनति रहेन ॥
आखिरि हम यहै समझि पायेन राजन का यही मनोरंजन।
अँगरेजन केर इशारे पर पहिरावैं अँगरेजी कंगन ॥
सरकारी पिट्ठुन का करतब रुपया लूटैं कृषि कारन तैं ।
अगिली सन्तानै पतित करैं ई कालिज के उपकारन तैं ॥
यहि वे समाज का कौन लाभु उल्टा मेहरापनु बढ़ति जाय ।
एकुतौ है कोढ़ गुलामी का दूसरे यह खाझौ मढ़ति जाय ॥
चाहै कोई कुच्छौ बक्कै, मुल हमें खुलासा देखि परा।
हम पूँछ उठावा देखि लिहा सारे घर माँ मादा निकरा ॥

पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र—'मानस' के अनन्तर अवधी में प्रबन्ध-काव्य या महाकाव्य के रूप में जो ग्रन्थ हमारे समक्ष आता है, वह है 'कृष्णायन'। 'कृष्णायन' के लेखक पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र हैं। मिश्र जी का व्यक्तित्व साहित्यिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रस्फुटित हो चुका है। मध्य प्रदेश में लगभग पाँच वर्षों तक आप गृह-मन्त्री के पद पर सफलता पूर्वक कार्य कर चुके हैं। जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' तथा 'लोकमत' आदि पत्रों के आप सम्पादक भी रह चुके हैं और आजकल 'सारथी' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। सेठ गोविन्ददास के सम्पर्क से आपको साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। प्राचीन संस्कारों और धार्मिक आदर्शों के प्रति आपकी बड़ी आस्था है।

'कृष्णायन' अवधी में लिखित एक प्रबन्ध-काव्य है। कृष्ण-काव्य की परम्परा में यही एक ग्रन्थ है जो सर्वप्रथम अवधी के माध्यम से हिन्दी के पाठकों के समक्ष आया है। कवि को तुलसीदास जी की शैली बहुत प्रिय प्रतीत हुई है, जैसा कि निम्न लिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है **तुलसी शैलिहि मोहि प्रिय लागी। भाषहु बिनु विवाद रस पागी।** इसके अति-रिक्त कवि को 'मधुप-वृत्ति' भी प्रिय है। उसने कालिदास तथा भारवि आदि महाकवियों की शैली को अपनाने का प्रयत्न भी किया है :

जदपि ध्येय निज कतहुँ न त्यागा।

मधुप स्वभाव मोहि प्रिय लागा ॥
छमहि अकिंचन जानि सुजाना।
रंचहु उर न काव्य अभिमाना ॥

मिश्र जी की भाषा अवधी होते हुए भी जायसी और तुलसीदास की भाषा से भिन्न है। कवि की भाषा जायसी की भाषा के सदृश ग्रामीण अवधी नहीं है। 'कृष्णायन' की भाषा संस्कृत के शब्दों से प्रभावित है। जो अन्तर हमें 'पद्मावत' और 'मानस' की भाषा में मिलता है वही 'मानस' और 'कृष्णायन' की भाषा में है। समाजगत तथा साहित्यिक प्रभावों के कारण मिश्र जी की भाषा अत्यन्त परिष्कृत और सुष्ठु है।

'मानस' की भाषा कम संस्कृत-गर्भित नहीं है, परन्तु जो माधुर्य, गति, सजीवता और आकर्षित करने की शक्ति 'मानस' में है वह 'कृष्णायन' में नहीं है। 'कृष्णायन' में 'श', 'ष', 'ण' आदि का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है।

संस्कृत-शब्दों के प्रयोग से कवि की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट बन गई है। उदाहरण के लिए :

१. परम रम्य जमुना बहति, स्वच्छ सुशीतल नीर।
२. सुदृढ़ मुष्टि आकृष्ट मौर्वि रव।
३. पृथक्-पृथक् नायक प्रतिवेषा।
४. कुन्तल मुक्त हरत कृत वाला।
५. वदन लपाग्नि ज्वलन्त।

निश्चय ही ये पंक्तियाँ साधारण जनता के शब्द-ज्ञान से दूर पहुँच गई हैं। इसके अतिरिक्त आर्य भाषाओं में प्रचलित समास-क्रम के विपरीत कवि ने अनेक स्थलों पर समास का उलटकर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ :

रथ-प्रति, जाया वीर, प्रान्त प्रति, सर्वस्वहृत, दिन प्रति, द्रुत सन्देह।

कवि का शब्द-ज्ञान व्यापक और सुन्दर है। थोड़े में बहुत कहने की कला में वह प्रवीण है। 'कृष्णायन' सुन्दर भाव-चित्रों से भरा पड़ा है। संवादों से उसका वाक्-चातुर्य प्रकट होता है।

'कृष्णायन' के सामाजिक चित्रण से कवि का सुधारवादी दृष्टिकोण झलकता है। साथ ही इससे वर्तमान युग की सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। कवि मर्यादावादी दृष्टिकोण से समाज को देखता है। 'कृष्णायन' में वर्तमान राजनीतिक विचार-धारा का भी पोषण हुआ है :

१. सत्य अहिंसा इन्द्रिय संयम।
शौचास्तेय पंच धर्मोत्तम॥

२. परै विपत्ति जब देश पै, सकल भेद बिसराय।
चारि वर्ण योगी यतिहु, आयुध लेहि उठाय॥

३. दै न सकत जो प्रजहिं सहारा।
मृतक श्वान सम सो भू भारा॥
सो जल विरहित जलद समाना।
काष्ठ मतंग सदृश निष्प्राना॥

रमई काका—वर्तमान काल में अवधी के प्रति हिन्दी-भाषी जनता का ध्यान आकर्षित करने वाले कलाकारों में स्वर्गीय पं० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', पं० वंशीधर शुक्ल एवं पं० चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' के नाम विशेष आदर के साथ उल्लेखनीय हैं। इन तीन कवियों की कला से प्रेरित होकर कितने ही व्यक्तियों ने अवधी में काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी है। इनके काव्य ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रतिभा अवधी-जैसी जनपदीय बोली को साहित्यिकता के आसन पर आरूढ़ करा सकती है। इन कवियों की प्रतिभा के प्रकाश से वर्षों से उपेक्षित और अनादृत भाषा का-सा जीवन व्यतीत करने वाली अवधी भी आलोकित हो उठी और समस्त जनपदों की भाषा में सर्वाधिक जागरूक भाषा बन गई है।

रमई काका का जन्म फाल्गुन कृष्णा सं० २००९ में रावतपुर जिला उन्नाव में हुआ था। सन् १९४२ ई० में आप रेडियो-स्टेशन लखनऊ में पंचायतघर के विशेष कलाकार के रूप में नियुक्त हुए। वहीं पर आज भी आप पंचायतघर का संचालन कर रहे हैं। पंचायतघर के संचालन के हेतु आपने सैकड़ों नाटक, प्रहसन, गीत, कविता और वार्ताओं की रचना अवधी

के माध्यम से की है। 'रमई काका' नाम आपको वहीं मिला।

'रमई काका' हास्य-रस से युक्त और गम्भीर दोनों प्रकार की रचनाएँ करने में सफल हुए हैं। उनके काव्य में व्यंगात्मक हास्य का अच्छा परिपाक हुआ है। जहाँ एक ओर आपने 'कचहरी साहब तैम्याँह', 'लखनऊ में चार धोखा', 'बरखोज', 'बुढ़ऊ का बियाहु' की रचना की है, वहाँ दूसरी ओर 'धरती हमारि-धरती हमारि' की रचना में आपको वांछनीय सफलता प्राप्त हुई है। वे साहित्य के क्षेत्र में किसानों की नई विद्रोही भावना के चित्रकार हैं। जीवन के चित्रण में भी उनके काव्य की सबसे महान् विशेषता है। उनके अन्तर्गत निहित व्यंग-भाषा में, मुहावरों के प्रयोग में, यथार्थ भाव को प्रकट और प्रकाशित करने हेतु उपमाओं में, पात्रों की वेश-भूषा, व्यवहार, और आंगिक वर्णन में जिस हास्य रस का उद्रेक रमई काका की कविताओं में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होता है। उनकी अद्भुत वर्णन-शक्ति काव्य में एक प्रकार की सजीवता का समावेश कर देती है। कवि की दृष्टि जिधर भी जाती है उधर ही से वह समाजगत नैतिकता आदि के अनेक दोषों को खोज लाती है।

कवि ग्रामीण क्षेत्र का निवासी है। इसीलिए उसे ग्रामीण जीवन, वातावरण, व्यवहार आदि का सम्यक् ज्ञान है। वह जहाँ कहीं गाँव की प्रकृति और वैभव का वर्णन या चित्रण हाथ में लेता है वहाँ उसे सजीवता प्रदान कर देता है। पाठकों के आगे ग्रामीण वातावरण मूर्त हो उठता है और यह कवि की सबसे बड़ी सफलता है। कवि किसानों के गौरव, अन्न की बड़ाई, परवशता की निन्दा, सुराज की पुकार आदि के वर्णन में अत्यधिक प्रगतिशील है। वह नवयुग के किसान की विद्रोही आत्मा को पहचानने में भी समर्थ और सफल है। उनकी 'खरिहान', 'पिंजरा का पक्षी', 'धरती हमारि-धरती हमारि' आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। हमारे कवि में मौलिकता, चिन्तन की गम्भीरता, दृष्टिकोण की व्यापकता तथा भाषा का सुचारु ज्ञान है और ये सभी बातें उसे वांछनीय सफलता प्रदान करने में सहायक हैं।

'अइसी कविता ते कौनु लाभ' नामक कविता में कवि का प्रगतिशील

काव्यादर्श पठनीय है :

हिरदय की कोमल पँखुरिन माँ जो भँवरा असि ना गूँजि सकै।
उसरील बाँट हरियर न करै डभकत नयना ना पोंछि सकै॥
जहिका सुनतै खन बन्धन की बेड़ी झनझन ना झन झनाय।
उन पावन माँ पौरुख न भरै जो अपने पथ पर डगमगाय॥
अँधियारु न दुःखै सविता बनि अइसी कविता ते कौनु लाभु।

'बहुरिया' शीर्षक काव्य की भी कुछ पंक्तियाँ देखिये :

हम सासु मुला पुतहू अइसी
उइ पुतहू हमरी सासु बनी।
हम घर के काम-काज देखी
उइ खड़ी दुवारे बनी-ठनी॥
घर का हम चउका तूल्हू करी
उइ टुकुरु-टुकुरु दीदन झारै।
दिन बितवै अइसी-वइसी माँ
ना घर मा बढ़नी तक डारै॥

'खरिहान' का भी एक दृश्य देखें :

चारा की सीखी सुची परी। जल बीच पियासी है मछरी॥
ना पर अधीन सुख पाय सकै। मुँह ढिग चारा ना खाय सकै॥
हम दीख हुवै गदवद वलगर। अन्ना भैंसा दँहगर अँगदर॥
जो आजादी ते झूमि रहा। बिनु नाथ रसरिया घूमि रहा॥
पर यह बन्धन माँ बँधा गोईं। आखिर ते आँस उभारी रही॥

'खटमल' शीर्षक कविता देखिए कितनी रोचक है :

खटमल छाड़ौ मोरी खटिया।
ना जानै कइसे तुम आयो आपनि जाति बढ़ायो।
मचवन माँ तुम किला बनायो घिरगे सिखा पटिया॥
खटमल छाड़ौ मोरी खटिया।
मसल कहीगै छेटु करौना, जेहि पतरी माँ ज्यावौ।

तुम तो चूसौ खूनु हमारै, बसौ हमरिही खटिया ॥
खटमल छाड़ौ मोरी खटिया।
दिनु-दिनु दूबर होत गयन तुम होइ गयो ललंगा।
जिनकै खाट विपति माँ भ्वागै, मौजे करै कपटिया ॥
खटमल छाड़ौ मोरी खटिया
दूवर मनइन का चूसौ ना, चूसौ गात ललंगे।
स्वादु कौनु है ई देही माँ हाड़-माँस के टटिया ॥
खटमल छाड़ौ मोरी खटिया।

देहाती—श्री दयाशंकर दीक्षित 'देहाती' कोरसवाँ (कानपुर) के निवासी हैं और आप वर्तमान अवधी के श्रेष्ठ कवियों में हैं। वंशीधर जी शुक्ल और 'रमई काका' की तुलना में आप किसी प्रकार भी कम प्रतिभावान कवि नहीं हैं। आपकी शैली में एक विशेष आकर्षण और प्रभावित करने की शक्ति है। देहाती जी की लेखनी व्यंग लिखने में अधिक सिद्ध और अभ्यस्त है। उनके व्यंगों में मर्म को आहत करने की भली शक्ति है। उनकी भाषा जनता में बोली जाने वाली अवधी है और इसीलिए उसमें सजीवता अधिक है। कवि की निम्न लिखित कविताएँ पठनीय हैं :

ई चारिउ नित ही पछितात।
इनके रहै न पैसा पास ॥
अनपढ़ मनई बड़ पढ़ जोय।
सुरज उये पर उठै जो सोय ॥
कामु परै तो देवै रोय।
कहै दिहाती करु विस्वास ॥
इनके रही न पइसा पास।
ई चारिउ नित ही पछितात ॥
करै परोसिन ते नित ही रारि।
ख्यातन बाहर बवै उखारि ॥
स्यानो लरिका देय निकारि

उतरी उमिरी मेहरुवा वारि ॥
कहै दिहाती सुनि लेव बात ।
ई चारिउ नित ही पछितात ॥
× × ×
बतकट चाकर पौकट जूत ।
चंचल बिटिया बंचर पूत ॥
नटखति तिरिया लागै भूत ।
लड़ै मुकद्मा बिना सबूत ॥
कहै दिहाती रखियो याद ।
इनकी धोय गई मर्याद ॥
तिनकुतौ चितवौ हे भगवान ।
करैं बिनती कर जोरि किसान ॥
मसकति करै ख्यातन माँ जाय ।
जोति कै दीन्हिसि नाजु बोवाय ॥
निकसि औंसा गहवर पनपाय ।
निरावै पानी दइ सिंचवाय ॥
नाजु देव पाला दया निधान ।
करैं बिनती कर जोरि किसान ॥
ख्यात माँ उपजइ अन्नु अपारु ।
सुखी सब होइँ मुला परिवारु ॥
बढ़इ धनु-सम्पति औ व्यापारु ।
कहुँ सुनि परइ न अत्याचारु ॥
होइ अस भारत का कल्यानु ।
करैं बिनती कर जोरि किसान ॥
ख्यात पहिरे हरियर परिधान ।
गोहूँ में राजा इन्द्र समान ॥
चना फूले मटरौ हरषान ।

जवाहर बालिन माँ मुस्कान ॥
फूलि सेरसंय बसन्त दरसान ।
करैं बिनती कर जोरि किसान ॥

तोरन देवी शुक्ल 'लली'—खड़ी बोली की कवयित्रियों में 'लली' जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' लखनऊ की रहने वाली हैं। आपने खड़ी बोली और अवधी भाषा दोनों में ही एक ही समान उच्च कोटि का काव्य लिखा है। अवधी आपकी मातृभाषा है। उनकी 'हम स्वतन्त्र' कविता से उद्धृत कतिपय पंक्तियों से उनकी भाषा का ज्ञान सम्यक् रूप से हो जाता है। भाषा में प्रवाह है। परिमार्जित भाषा होते हुए भी वह जनता से दूर नहीं चली गई है :

अभिलाखा जागी हैं अनन्त जब तै सुनि पावा हम स्वतन्त्र।
सुनि कै केतना सुख पावा है,
मन माँ उछाह भरि आवा है
केतनेव आनन्द मनावा है
धुनि जै-जै कार सुनावा है
उन पर छावा नव-नव बसन्त जब ते सुनि पावा हम स्वतन्त्र।
यहु फल केतने बलिदानन का
केतने उज्ज्वल अभिमानन का
उनके तन का उनके मन का
वहि कै गाथा अब है अनन्त जेहि ते सुनि पावा हम स्वतन्त्र।
अब देस राम की जीति चलै
तजि द्रोह प्रीति की रीति चलै
जन जन अब त्यागि अनीति चलै
भारत हमार जग जीति चलै
तबहिन तौ हम बजिहै स्वतन्त्र अबही सुनि पावा हम स्वतन्त्र ।

मृगेश जी—मृगेश जी वर्तमान अवधी के तरुण कवि हैं। उनकी 'किसान-शंकर' कविता पठनीय है। आप बाराबंकी के निवासी हैं। बानगी

देखिये :

हम हूँ किसान तुमहूँ किसान
या संगति जुरी जुगाधिनि से यू नाता जुग-जुग का पुरान
हम जोतिहा तुम जोतिहर बाबा
दूनौ बेदर बेघर बाबा
हमरे काँधे पर हर-कुदारि
तुम बने सदे हैं हर बाबा।
ख्यातनमाँ धूरि उड़ाई हम तुम भसम मले घूमौ मसान
हम योगी जोगी तुम अपने
दूनौ के घर जन कयू जने
हमरिउ पसुरी-पसुरी निकसी
तुमरिउ छाती पर हाड़ जने
हम फटही कथरी माँ सोई तुम खाल ओढ़ि कै धरौ ध्यानि

श्री व्रजनन्दन जी—व्रजनन्दन जी लालगंज रायबरेली के निवासी हैं। आल इण्डिया रेडियो लखनऊ में अवधी के कार्यक्रमों में भाग लेने वाले कलाकारों में आप विशेष उल्लेखनीय हैं। आपकी 'बिरहिनी बसन्त' कविता से कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :

आयो है बन-बागन बसन्त।
छायो परदेश हमार कन्त।
कैलरिया कूकै पाय पिया।
सुनिहू के लाग हमार जिया।
वहिका सँयोग हम हैं यकन्त।
आयो है बन-बागन बसन्त॥
अमराई बागन माँ बौरी।
हमहूँ अनुरागन माँ बौरा।
वह फरिहै हमका नहिं अगन्त।
आयौ है बन-बागन बसन्त॥

खेतन माँ राई पियराई।
हमरे तन छाई पियराई।
का होई उनके बिना अंत।
आयो है बन-बागन बसन्त॥

श्री शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन'—आपका जन्म सम्वत् १६४७ में हुआ। आपका निवास-स्थान मौरावाँ जिला उन्नाव है। 'छात्र-शिक्षा', 'नूतन विलास', 'रईस रहस्य', 'दंगाष्टक' आदि आपकी रचनाएँ हैं। आपकी रचनाओं में सरसता होती है। हास्य रस की व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में आपका कौशल दर्शनीय होता है। आपकी भाषा मुहावरेदार, लोकोक्तियों से पूर्ण और मनोरंजक होती है :

१. अवलोकि समुन्नति दूसरेन की, मन माँ ही हाय पचा करते।
कवि नूतनजू लघु बातन में, बहुधा बड़ द्वन्द्व मचा करते॥
यह देत जुझाय हैं आपस माँ अपना चल चाले बचा करते।
नर शेर को ज़ेर करै के लिए, षड्यन्त्र अनेक रचा करते॥

२. गम खात बनै न रिसात बनै कुछ नूतन जीविका के डर सों।
कबहूँ न किसी का तिफाक पड़े भगवान लफ़ू से बड़े नर सों॥
तिनकी ना हाय लजायू रहे औ हँसाय रहे पर बाहर सों।
अरसे से बहाने बताय रहे, बरसों से बुलावत है परसों॥

३. गावत न गुण कवि कोविद प्रवीण कोउ,
आवत न अब भाट भिक्षुक दुआरे हैं।
कोऊ है दिखैया न सुनैया कवि नूतन जू,
अन्धाधुन्ध मची भरे नौकर नकारे हैं॥
ब्वालत न साहब नजाकत के मारे,
सारे मेहरे मुसाहिब रियासत बिगारे हैं।
नारि ज्यों नपुंसक की सेवत रियाया त्यौं ही,
होति है अपत्ति ऐसे भूपति हमारे हैं॥

भीतर भौन के मूस बढ़े अरु बाहर लाखन बाँदर बाढ़े।

गाँवन में झगड़े हैं बढ़े सब दौरैं अदालत दाँतन काढ़े ॥
युद्ध कै भीति वड़ी जग मा सब राष्ट्रन के परे प्राण हैं गाढ़े।
राशन कार्ड बढ़े जब ते तब ते बहुधा रहैं पाहुन ठाढ़े ॥
बीर बिहीन भई वसुधा जनखा हिजरा नर कायर बाढ़े।
मौलिकता का पता है नहीं पर सैकड़ों हैं कवि शायर बाढ़े ॥
चार सौ बीस कै लोग अनेक जगा जगा पै घर बाहर बाढ़े।
सूरमा रंचि न दिखाई परै इलेक्शन के नर नाहर बाढ़े ॥

श्री लक्ष्मणप्रसाद 'मित्र'—श्री लक्ष्मणप्रसाद 'मित्र' का जन्म सन् १९०६ ई० में हिंडौरा (सीतापुर) के वैश्य-कुल में हुआ था। आपने अवधी में आल्हा, बारहमासा, भजनमाला आदि की रचना की है। 'मित्र'-जी वर्त-मान काल में अवधी-काव्य के प्रवर्त्तक स्वर्गीय 'पढ़ीस' जी के विशेष कृपा-पात्र थे। उन्हींकी मनोरंजक और मजी हुई रचनाएँ सुनकर इन्हें अवधी में काव्य लिखने की अभिरुचि जाग्रत हुई। 'बुड़भस', 'सोमवारी', 'प्रेम लीला', 'सराध की श्रद्धांजलि', 'सिलहारिनी', 'बहू की सीख', 'घूस का जन्म', 'मड़ये की धूम', 'तशरीफ', 'दो खेतों की कहानी' आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। काव्य के अतिरिक्त आपने अवधी में 'बाण शय्या' नाटक की रचना भी की है। व्यावसायिक जीवन में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी मन की बात कहने के लिए वे कुछ-न-कुछ समय निकाल ही लेते हैं। उनकी 'जागरण वेला' की निम्न लिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं :

भोरु ह्वैगा भोरु ह्वैगा, जागु रे जड़ भोरु ह्वैगा।
जागरन का जगत मा ऊषा सुनहरा थार लाई।
पौन पुरवइय्या प्रभाती का मधुर सुर गुन गुनाई ॥
ताल भीतर कमलिनी मुसका उठी फिरि खिलखिलाई।
चहक चारि उवार चाह भरी चिरैय्यन केरि छाई ॥
राम सीताराम, सीता राम धुनि का जोरु ह्वैगा।
जागु रे जड़ भोरु ह्वैगा ॥
उठी बुढ़िया सासु खरभर सरस भावा निरस माखी।

सकपकाय उठी बहुरिया अंगु ऐंडति मलति आँखी ॥
कलिन पर गुन्जारि भँवरा भोरु ह्वैगा दिहिन साखी ।
नाउ का ज्यहि के न आरसु रसु चली चूसै नमाखी ॥
साहु सूरज चलि परे चन्दा तिरोहित चोरु ह्वैगा ।
जागु रे जड़ भोरु ह्वैगा ॥

अनूप शर्मा बी० ए० एल० टी०—श्री अनूप शर्मा खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हैं। आपकी प्रतिभा व्रज भाषा एवं अवधी के क्षेत्रों में भी विकसित हुई है। शर्मा जी की भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और शब्दों का चयन सुन्दर है। उदाहरण देखिये :

अमाउस का अँधियार रहै, सब सोइ गवा संसारु रहै ।
यक जोलहा के घर चोरु घुसा, जैसे तोरन माँ मोरु घुसा ।
जोलहा स्वावै जोलहिन स्वावै, लरिका स्वावै दुलहिन स्वावै ।
सबु मालु मल हंथियाइ चोरु, भागा जल्दी-जल्दी छिछोर ॥
तब चरखा परगा हरबराइ, गिरि परा मेड़ पर भरभराइ ।
हाथन ते गा सबु माल छूटि, तकुवा घुसिगा वइ आँखि फूटि ।
तब दुसरे दिन दरबारु जाइ, राजा से कहिसि गोहारु जाइ ।
सब कच्चा कच्चा हालु कहेसि, राजा के दूनौ पाँव गहेसि ॥
फिरियादि किहिसि हे महाराज, ह्वै गयेउँ काना मैं हाय आजु ।
हमरा जोलहा का न्याउ करौ, अब फूटी आँखिकि पीर हरौ ।
राजा जोलहा का बोलवाइनि, दुलकारिन मारिन गरियाइन ।
औ कहिनि कि कैदि माँ डारि देउ, औ यहि की आँखि लेउ निकारि ॥
यहु काहे घर माँ मेड वसिस, औ तेहि पर तकुआ टेढ धरिसि ।

शारदाप्रसाद 'भुशुण्डि' — श्री शारदाप्रसाद 'भुशुण्डि' वर्तमान अवधी के प्रमुख कवियों में प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं। 'पढ़ीस' जी ने अवधी-काव्य-रचना की जो परम्परा सन् १६३०–४२ तक स्थापित की उसीसे प्रेरित होकर जिन कवियों ने अवधी में लिखना प्रारम्भ किया उनमें

शारदाप्रसाद जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। समाज, शासन, दुराचार और बाह्याचारों के वे बड़े कटु आलोचक हैं। उनका काव्य प्रकट और निहित व्यंग्यात्मक हास्य से भरा पड़ा है। बड़े ही सतर्क और सजग लेखक की भाँति उनकी दृष्टि सदैव कुरीतियों और दोषों की तह में पहुँच जाती है। 'असम्बली की चकचक' और 'अब लखनऊ ना छुवाड़ा जाई' उनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं, जिनमें राजनीतिक तथाकथित महापुरुषों पर तीव्र व्यंग्य है। जीवन को कवि ने निकट से देखने का प्रयत्न किया है। उसीके फलस्वरूप उनके अनुभव काव्य में बड़े ही सजीवता के साथ अंकित हुए हैं। कवि को अवधी भाषा का सम्यक् ज्ञान है। शब्दों का चुनाव करने में वह कुशल हैं। लक्षणा और व्यञ्जना के द्वारा वह काव्य और भाषा में जान डाल देता है। 'हम तब्बौ चना कहावा है, हम अब्बौ चना कहाइत है' कविता में अवधी-प्रदेश में अत्यधिक प्रचलित मुहावरों का सुन्दरता के साथ प्रयोग किया गया है। इस काव्य में शोषित वर्ग की विद्रोही भावना का सुन्दरता के साथ चित्रण हुआ है। 'भुशुण्डि' जी का जन्म वैशाख सम्वत् १९६७ में प्रयाग जिले के कैमे गाँव में हुआ था। इनकी कविता देखिये :

जब बँदरन किहिनी सकल माँ दुनिया के मनई रहति रहें।
जब अपने मन की बातन का संकेतन से सब कहति रहें॥
जब दुइ अक्किल के पाछे माँ डण्डा का लीन्हें फिरा करैं।
जब आपस माँ करिकै बिरोधु अपसै माँ हरदम भिरा करैं।
हम उनसे देह नुचावा है हम इनसेव देह नुचाइत है।
जब तनिक सभ्यता के रंगमाँ रँग मैं बिरवन के अधिकारी।
कुछ बरदा गाइन भैंसिन कै बुइ करै लाग जब रखवारी।
जब पिये सोमरसु मस्त फिरैं जग का समझैं मानो भुनिगा।
बुइ आजकालि के मनई अस पुनि चमक चाँदसी का जाने॥
हम तब्बौ भूँजे गयेन बहुत, हम सब्बों भूँजे जाइत है।
हम शाहजहाँ के हितू रहेन हमका छुइ पक्का दावा है।
हम वनिकै संजम राय मौत से उनकर जान बचावा है।

बुई हमरी इज्जत के खातिर मुल ब्वालें माँ कंजूस रहे।
पुनि आजकालि के सनई तो हमका मनमानी मूस रहे।
हम तबौ कल्हारेन गयेन बहुत हम अबौ कल्हारे जाइत है।
कुछ हमरी त्याग तपिस्या पर कउनो न तनीकौ ध्यान दिहिस
अपनी मगरूरी कै आगे हमका न उन्नति करै दिहिस।
हम तब्बो मुटिया अन्नु रहेन अब्बौ मुटिया कहवाइत है॥

पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'—पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' अवधी के उदीयमान प्रतिभावान कवि हैं। खड़ी बोली में भी आपको प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। 'निशंक'-जी कान्यकुब्ज कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आपका जन्म-स्थान जिला हरदोई का मल्लावाँ नामक ग्राम है। आपकी 'किसानन कै बसन्तु' कविता से यहाँ कतिपय पंक्तियाँ दी जाती हैं :

आँवन पर कोइली बोलि रही, बौरन माँ अंबिया झूम रही।
नहिं रही बयारि बसन्ती है हरियर पातन की चूमि रही॥
टेसू के बिरिछ फूलि बनमाँ, हैं लाल-लाल अंगारु बने।
बिरवा पोसाक नई पहिरे हैं धरती क्यार सिंगारु बने॥
कहुँ लरिका भूँजि रहे होरा बिरवन कै गौझरि छाँहीं माँ।
होइ रही कतौं उँबिहाई है कुछ दूरि गाँव कै पाही माँ॥
भोरहरे सबै कटवाइ चले, सब अपन-अपन हँसिया लैकै॥
धरि पाँति बैठिगे ख्यातन माँ, सब नाउँ राम जी का लैकै।
हँसि-हँसि कै ठीक दुपहरी लै, सब-का-सब खेतु गिराइ दिहिन।
औ लाँक बाधि आपनि-आपनि खरिहानन ढोय लगाय दिहिनि॥

श्री बद्रीप्रसाद 'पाल'—श्री बद्रीप्रसाद 'पाल' अवधी के प्रमुख कवि हैं। आप हास्य और व्यंग्य-प्रधान काव्य लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'पाल' उपनाम से आपकी कविताएँ पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। उनकी शैली प्रतिभा और व्यापक दृष्टिकोण की परिचायिका है। उनकी 'बाबू साहब का ऐश्वर्य' नामक रचना से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं :

छप्पर के रहु बाँस बड़े घरमों घुसौ लेत खरोरि-खरोरि।
खासी चुरैल बनी घर वाली तकै जनु घुघ्घू घरोरि-घरोरि॥
पाल पड़े चिथड़े सर मानो पाला कोउ डारयो परोरि-परोरि।
बाहर फैलन गाँठे फिरै मनो जोरि धरे है करोरि-करोरि॥

'लिखीस' जी—'लिखीस' जी का उपनाम 'पढ़ीस' जी की टक्कर पर पैरोडी के रूप में रखा गया है। 'लिखीस' जी व्यंग्यपूर्ण हास्य की रचना करने में विशेष कुशल हैं। हिन्दी-काव्य-प्रेमी उनके व्यंग्यात्मक साहित्य से खूब परिचित हैं। उनकी शैली में प्रवाह और प्रभावित करने की सुन्दर शक्ति है। जीवन के सत्य को अपनी विशेषताओं के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में उन्हें काफी सफलता मिली है। उनके काव्य को पढ़ते ही हमें 'पढ़ीस' जी और 'रमई काका' का ध्यान हो आता है। इन तीनों की शैली में बहुत-कुछ साम्य है। उनकी एक कविता 'उइ को आही' से यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं :

मुँहु खोले सबके मुँह लागैं, खाँकै का बहुत उपाव करैं।
मनइन ते भरी जवानी माँ, ब्वालैं धालैं ठेलहाव करैं॥
खुब बनी ठनी सिंगारु किहे, राहिन ते पूछैं हाँ, नाही।
ककुआ सहरन माँ गली-गली, बइठी ठाढ़ी उइ को आही॥
हम तौं जब आखा मुमुरि उठेन, उइ रूपु मेम का कस धारैं।
आही तौं अपने द्यासै की चेहरा चाहैं जस रँगि डारैं।
यहि माँ मुइ डोलु रोजु आई पिरथी-बिरथी पत्ताल धसी।
स्वाचउ-स्वाचउ कुछ जुगुति करौ नाहीं सारा संसारु हँसी॥
तुम तौ हौ पंडित बहुत गुनी बिसुनाथ कै कासी पास किह्यो।
मिडिलौ का पढ़ियौ न फेलु किह्यो मुला दोम चहरुम पास कियो॥
तबते लिखीस के चोला ते सेवा जस चहत्यो लइ लेत्यो।
ककुआ कउने दिन फुरसति माँ उनहुन का लेच्चरु दइ देत्यो॥

विद्यार्थी महावीरप्रसाद वर्मा—श्री विद्यार्थी महावीरप्रसाद वर्मा ने अवधी भाषा के वर्तमान लेखकों में अच्छा स्थान प्राप्त किया है। अवधी

का प्रसिद्ध छन्द 'बरवै' लिखने में इनकी धाक जमी हुई है। उनकी 'सच्ची सलाह' से कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं। इस उद्धरण में शब्दों के चयन पर ध्यान दीजिए :

धीरज धरु बिन ननन्दी करु पति चाह।
अइहै आजु सुधारक रचिहै ब्याह॥
करिया तोरि सुरतिया मुख मुलु चून।
धनि तोरि ससुरिया औ बर दून॥
नैन रोड माँ कोठिया, ना दुख तोहि।
फरिगा रुखु करमवा, भुलत न मोहि॥
भरि ले माँग सेंदुरवा जनि करु देर।
भीतर जरत बिजुरिया होत उजेर॥

रामगुलाम वैश्य—रामगुलाम वैश्य भी वर्तमान अवधी के कवियों में उल्लेखनीय हैं। उनकी 'जो प्रभु हम पटवारी होइत' कविता की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :

खेत खेत ना घूमैं जाइत घर बैठे परताल लगाइत।
दैय्यो का ना तनिक डेराइत, विष कै पूरी पोइत॥
निमरन के सब नाम हटाइत, जबरन के कुल जोत लगाइत।
मुँह का माँगा रुपया पाइत, बहुतन के घर खोइत॥
सुखियन के दरबार में जाइत दुखियन कै ना बात बलाइत।
मुखियन का कानून पढ़ाइत, बीज कलह के बोइत॥
लैकर बस्ता कलम दवाइत, घूमित घर घर पूरिन खाइत।
अपनी राग रागनी गाइत, तानि पिछौरी सोइत॥

सोनेलाल द्विवेदी—स्वर्गीय सोनेलाल द्विवेदी मौरावाँ जिला उन्नाव के निवासी थे। लगभग ३०-३२ वर्ष की अवस्था में ही यह कविता-कानन-कुसुम काल के कराल हाथों में कुम्हला गया। द्विवेदी जी बैसवाड़ी अवधी के अच्छे होनहार कवि थे। अल्प काल में ही इस कवि ने अपने जिले में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। समस्या-पूर्ति का इन्हें अच्छा अभ्यास था।

कवि का आत्म-परिचय बैसवाड़ी भाषा में निम्न लिखित है। इनका भाषा-प्रवाह और शब्द-चयन विचारणीय है :

गाँव मउरावाँ माँ मुहला है चन्दन गंजु,
लगै गुरहाई जहाँ ताका रहवैया हूँ।
मेरो नामु सोनेलाल दुबे हौं पत्यौंजा क्यार,
लाल उपनामु का धरत छन्द मैद्या हूँ॥
गंगा का छ्नाती औ पनाती लाऊ जीको लगौं,
बाबा बरखाड़ी दीन कासी क्यार छैया हूँ।
ब्रह्मा का भतीजा छोटा जीजी ह्वौं भरोसे क्यार,
दादू का दमादु दयाशंकर का भैया हूँ॥
खाइत अफीम न तमाखू भाँग कबौ भैया,
पेट भरि जात है हमार याक पाव मा।
भारे सुकुवारी के न कामु सपत्यात कछु,
सौदौ नहीं जानित बिकात कौने भावा मा॥
नये रचि-रचि के सुनाइत कवित्त रोजु,
हाड परचत हैं हमारि खाँव-खाँव मा।
पट्टा न रखाइत रुपट्टा डारे काँधे चलि,
ठट्टी नाहिं करित बसित मउरावाँ मा॥

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा—श्रीमती सिनहा वर्तमान खड़ी बोली की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। अवधी में भी आपने अनेक कविताओं की रचना की है। उनकी कविता में बैसवाड़ी अवधी का परिष्कृत रूप उपलब्ध होता है। भाषा कुछ खड़ी बोली से प्रभावित प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ :

अबकी के फगुआ मा फिरिते नूतन द्वापर कै जुग उतरै।
बनि जाय देश यहु बृन्दावन जिहि मा जन्मे फिर ते मोहन।
अनुराग रूप धरि विहँसि परै राधा कै लाज भरी चितवन॥
धरती पर फिरि ते कचकचाय फूलैं रसाल कचनार खिलैं।
गहगहे कदम्ब बिरुअन तर गोपी ग्वाला बन बनुज मिलैं।

उन्माद लाज कै झकझोरि दधि-गोरस गलिनर बगरै ।
अबकी कै फगुआ मा फिरिते नूतन द्वापर कै जुग उतरै ॥

मन कै साध

फिरि ते लौटे उई दिन सुन्दर ।
जब घर-घर बृन्दावन लागै, राधा मोहन कै प्रीति लुटै ।
कन-कन मा प्रेम समाय रहै आपुस कै कारिख दाग छुटै ॥
फिरि ते लौटे उइ दिन सुन्दर ।
ब्रज के करील कुन्जन मा जब गूँजे मोहन के बंशी-स्वर ।
जमुना के आनन मा उमड़ै अमृत तरंग लै लहर-लहर ॥
फिरि ते लौटे उइ दिन सुन्दर ।
उई कदम, तमालन तरु नीचे गोपी ग्वालन कै रास रचै ।
बंशी-वट तीरे नेह पवन कै साँसन मधुर हुलास मचै ॥
फिरि ते लौटे उइ दिन सुन्दर ।
दधि मथै और नैनू लहरै, जब चलै मथानी घहर-घहर ।
सद्भाव रतन उतराय चलैं, मनई का प्रेम मचै अन्तर ॥

सुरेन्द्रकुमार दीक्षित—दीक्षित जी का जन्म अक्तूबर १९२७ को बम्भौरा (सीतापुर) में हुआ था। आप अवधी के उदीयमान तरुण कवि हैं। कवि के रूप में आपका भविष्य उज्ज्वल है। आपकी 'पूस की राति' शीर्षक रचना देखिये :

सिबिता अथये कुछ धार भई,
औ राति ओस ते भीजि गई।
नखतन की जोति भई नीली,
ठंढक अकास लै ब्यापि गई ॥
कोहिरा का परदा गिरा ओढ़,
सब दृश्य आँखि ते दूर भए ।
आकारु प्रगट बस बिरवन का,
जो ठाढ़े-ठाढ़े ठिठुर गए ॥

धुन्धि ना जानी कैसि घिरी,
जुन्धेयउ जेहिते पियराइ गई।
जैसे दूबरि रोगिनि कोई,
धरती पर मुरछा खाइ गई ॥

रमाकान्त श्रीवास्तव—श्रीवास्तव जी उन्नाव के रहने वाले हैं। आप अवधी के तरुण कवियों में अच्छा स्थान रखते हैं। कुछ पद देखें :

हरवाहा हारै जाय रहा।
उठि चरा धुँधरखे सर्दी मा,
कथरी गुदरी ओइसी फेंकिसि।
दूनो हउदन मा बैलन के,
भूसा मा डारि खरी सानिसि ॥
अब बैल पछाँही खाय लागि,
हउदा की सानी चमर चमर।
गे फूलि बैलवन के ब्वाखा,
जब खाय लिहेन हरबर-हरबर ॥
वह हरुमाची सुधियाय रहा।
हरवाहा हारै जाय रहा ॥
लरिकन की दीदी ते ब्वाला,
हम आजु न अइबै घर तनका।
ज्वातै का आजु बहुत ज्यादा,
तब तलक लइ आवो मटुकी ऐ ॥
निक्कवा उजरवा गुरु ध्वारा,
है धरी अबै भेली आधी।
जउनी का कालिह रहै पंवारा,
वह गुरु बइठे गुलियाय रहा।
हरवाहा हारै जाय रहा ॥

देवीदयाल शुक्ल 'प्रणयेश'—वर्तमान अवधी के कवियों में 'प्रणयेश'

जी का अच्छा नाम है। आपका पूरा नाम देवीदयाल शुक्ल और निवास-स्थान है नारियल बाजार, कानपुर। प्रणयेश जी अधिकतर गम्भीर विषयों पर काव्य की रचना करते हैं। आपकी 'मनुष्यता' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ पढ़िए :

मानुस तन का है यही लाभु,
जब दुसरेन का उपकार करै।
आपनपौ अस झलकाइ देय,
आपन कुटुम्ब संसारु करै॥
केहिकै बिटिया केहिका बेटवा,
माया का एकु भुलावा है।
घर बाहर चाहै जहाँ रहै,
सब आपन कोउ न परवाहै॥
निज त्याग-तपस्या के बल पर,
यहि दुनिया का मन जीति लेइ।
उपभोग कमाई आपनि कै,
जो बचै दीन का बाँटि देइ॥
मन मा राखै ना भेद भाव,
सुन्दर सब ते बरताउ करै।
अपने ते राखै जौनु तेहु,
तेहिका जी भरिकै चाउ करै॥

श्री केदारनाथ त्रिवेदी 'नवीन'—श्री नवीनजी परसेंडी (सीतापुर) के निवासी हैं। वर्तमान अवधी के कवियों में आपका अच्छा स्थान है। इनकी कविता में अवधी के ठेठ शब्दों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। भाषा में कहीं-कहीं पर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग बड़ा असंगत और अनुपयुक्त प्रतीत होता है। कवि की भाषा सीतापुरी अवधी है। उनकी 'खेतिहर से' शीर्षक कविता से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

हरि हलधर के प्यारे खेतिहर।

सब जग के रखवारे खेतिहर ॥
उपकार हिये धारे खेतिहर ।
भारत के दृग-तारे खेतिहर ॥
संस्कृति का भरना भरइ कौन ।
सरबरि खेतिहर की बरइ कौन ॥

भुइँ ग्वाडति-उत्रातति-ब्वावति है ।
सींचति है और निरावति है ॥
रब्बी खरीफ उपजावति है ।
सबही के जीउ जियावति है ॥
तेहिकी उपमा अनुहरै कौन ।
सरवरि खेतिहर की करै कौन ॥

दिन होइ चहै कछु रात होय ।
सारी संसृति सुसुवात होय ॥
अरसात होइ जमुहात होय ।
बाहर कोऊ न दिखात होय ॥
गोईं लैं हारैं करइ गौन ।
सरवरि खेतिहर की करै कौन ॥

है धन्य-धन्य साहसी आज ।
राखे है जग की लोक-लाज ॥
उपजइ भाँति-भाँतिन अनाज ।
कस खेइ रहा जीवन-जहाज ॥
अस कौन सराहै जो अजौन ।
सरवरि खेतिहर की करै कौन ॥

गिरिजादयाल 'गिरीश'—आप लखनऊ के निवासी हैं और कृषकों की समस्या पर कविता लिखने के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ :

ख्यातन ते एकु किसानु याक दिन आवा घरै निकाईं ते ।
देखिसि अब्यार रोटी मा तौ उहु ब्वाला जाय लुगाईं ते ॥

हमहू तौ जानी अब तक घर मा कौनि-कौनि तुम काम किह्यौ ।
जिहिते तुमका न मिली छुट्टी हमरे भोजन मा साम किह्यौ ॥
हम भैसा हस भरमी बाहर तुम घर मा मौज उड़ौती हौ ।
तावा हसि ग्राह तपाई हम तुम छाँहन जीउ जुड़ौती हौ ॥
हम काल्हि कामु घर का करिबै तुम जायौ खेतु निरावै का ।
तुम आपुइ कामु निहारि लिह्यौ हमका ना परी बतावै का ॥
वह बोली कछु न उजुर हमका सिर माथे हुकुम तुम्हारा है ।
जिहिमा तुमका आराम मिलै हमरा उहु कामु पियारा है ॥
घर वाली उनकी होति भोरु गै घरते खेतु निकावै का ।
मुहु दाढ़ी म्वाछ जराइनि उइ जब बैठे दूधु पकावै का ॥

शिवसिंह 'सरोज'—श्री शिवसिंह 'सरोज' अवधी के उदीयमान कवि हैं। आप बाराबंकी के निवासी हैं, पर अधिकतर लखनऊ में ही रहते हैं। आपकी 'पुरवाई' शीर्षक कविता में अवधी का अच्छा रूप व्यक्त हुआ है। 'गमुवारे', 'वेरिया', 'मोरहरी', 'दूबर' आदि शब्दों का बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रयोग हुआ है :

बदरन के चदरन ते छनिकै बिजुरिन कै परिछाई ।
पकरि-पकरि कै गहे सुतरुवर बहै पवन पुरवाई ॥
बूँदन ते मन भरा हरे हिरदय पर धरी जवानी ।
सावन कै ऋतु धरती ओढ़ै नीचै चादर धानी ॥
गमुवारे बिरवन के पातन पर परभात केवेरिया ।
जब मन मा हुलास भरि उतरै किरनै चीर अँधेरिया ।
तब पुरवइया बँवर मोरहरी कै हर ओर डोलावै ।
भीजे पात पर पुरवाई बूदैं नचावत आवै ॥
नान्हि-नान्हि सुकुमार धान के खेत प्रान ते प्यारे ।
धरे वास तिन तनके दूवर कनका बोझु समारे ॥
जब लहरायँ भोर भरिद्वनकन मा पातन के पानी ।
पढ़ै संकलपु पवन सोन बिथरावै पूरब दानी ॥

देवीशंकर द्विवेदी—द्विवेदी जी उन्नाव के निवासी और वर्तमान अवधी के तरुण कवि हैं। निम्न कविता में पाठक उनकी प्रतिभा देखें :

नदी किनारे हरियर बिरवन कै साँवरिया छाँह।
धीरे ते पकरे है नदिया के कगार कै बाँह॥
बिरवन ते लइकै कगार तक फैली हरियर घास।
जेहि पर बइठे मगन होति हैं तबियत बहुतु उदास॥
तिनुकु भोर उखे सूरज उवतै खन उजियारी लाल।
चूकै लागति है बिरवन के ठुन्नू पर कै डाल॥
धीरे-धीरे बिरवन ते उतरति है पाँव सँभारि।
नदिया मइहाँ फाँदि परति है कपड़ा अपन उतारि॥

आधुनिक रहीम—आधुनिक रहीम अवधी में हास्य और व्यंग्य के प्रमुख लेखक हैं। हिन्दी के पाठकों को उनके काव्य से बड़ा निकट परिचय प्राप्त है। समय-समय पर उनकी काव्य-सुधा का पान पाठकगण करते रहते हैं। यद्यपि आधुनिक रहीम का कोई काव्य-ग्रन्थ अभी तक नहीं प्रकाशित हो पाया है फिर भी स्फुट-काव्य-लेखकों में उनकी अच्छी ख्याति है :

रहिमन बेटे सों कहत, क्यों ना भया वकील।
जीते फीस हजार की, हारे होति अपील॥
लिखत-लिखत अच्छर रहे, तुक तुकान्त विलगाय।
रहिमन सो कविराज है विशेषांक ठहराय॥

आधुनिक बैताल—आधुनिक रहीम के सदृश आधुनिक बैताल का काव्य भी बड़ा सरस और मनोरञ्जक है। उदाहरणार्थ कतिपय पंक्तियाँ पढ़िए :

बिन ट्रेडिल के प्रेस, भेस बिन लीडर जैसे।
बिन पाउडर के फेस, केस बिन प्लीडर जैसे॥
बिन विज्ञापन पत्र, बिना खद्दर के चन्दा।
बिना पार्कर जेब, कारपेण्टर बिन रन्दा॥

बाबू जी चश्मा बिना, बिन साइन चैक काट दे।
बैताल कहै विक्रम सुनो, इन्है लिस्ट ते छाँटि दे॥

आधुनिक सूरदास—महाकवि सूरदास ने व्रजभाषा में अपने अमर काव्य की रचना की है, परन्तु आधुनिक सूरदास अवधी में काव्य-रचना कर रहे हैं। इनकी अभिलाषा निम्न लिखित पंक्तियों में पठनीय है :

जौ हम सम्पादक बनि जाइत।
छाँड़ि मसखरापन आपन सब मन गम्भीर बनाइत।
खर्च करित तब पूरी अठन्नी कुरता एक मँगाइत॥
खद्दर-चद्दर गरे म डारित गांधी कैप लगाइत।
कैंची तेज हाथरस वाली वी० पी० से मँगवाइत॥
हर्र-फिटकरी कुछौ न लागति चोखा रंग देखाइत।
छोरि मंहा डर भरित चुनौटी लाल दवात बनाइत॥
हैडिंग बदलि काटिकै कालम तब कम्पोज कराइत।
अपना लेख कहानी आपनि आपन छन्द छपाइत॥

: ३ :

अवधी के छन्द

काव्य-रचना के लिए छन्द-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक माना गया है यद्यपि इसके अपवाद हिन्दी के अनेक कवि माने जा सकते हैं। समस्त विद्याओं का मूल वेद है और छन्द-शास्त्र वेदों के छः अंगों (छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा और व्याकरण) में से एक आवश्यक अंग है। चरण-स्थानीय होने के कारण छन्द को परम पूजनीय माना गया है। जैसे बिना पाँव के मनुष्य पंगु कहा जाता है उसी प्रकार काव्य-जगत् में छन्द-शास्त्र के ज्ञान से शून्य कवि पंगुवत् है। छन्द-शास्त्र के रचयिता महर्षि पिंगल हैं। छन्द-शास्त्र एक विद्या है, जो सर्वानुकूल कही गई है। इसके ज्ञान से काव्य के पठन-पाठन में अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। संसार के समस्त साहित्यों का सौन्दर्य उनके छन्दों में ही भरा पड़ा है। आदिकवि वाल्मीकि की सरस्वती भी छन्दों के माध्यम से ही साहित्य में व्यक्त हुई थी। छन्दों के दो प्रकार हैं—प्रथम वैदिक और द्वितीय लौकिक। वैदिक छन्दों का काम केवल वेद आदि के अध्ययन में पड़ता है और अन्य शास्त्रों तथा काव्यों की रचना लौकिक छन्दों में हुई है। लौकिक छन्दों के दो मुख्य भाग हैं—प्रथम मात्रिक और दूसरा वर्णिक। वर्णिक वृत्त क्रमबद्ध है, और मात्रिक छन्द मुक्त या स्वच्छन्द-विहारी है।

प्रत्येक भाषा या बोली के अपने विशिष्ट छन्द होते हैं, जिनमें उनका सौन्दर्य भली-भाँति निखर पाता है। यों तो कवियों को वाणी-अभिव्यक्ति के लिए कोई भी छन्द ग्रहण कर लेने की स्वच्छन्दता रहती है परन्तु फिर भी शब्दावली, शब्दों का चयन, शब्दों को बैठाने के लिए कवि को कतिपय विशेष छन्दों का प्रयोग करना बड़ा सरल प्रतीत होता है। व्रज-भाषा का सौन्दर्य दोहा, कवित्त, सवैया तथा रोला पदों में जितना निखरा है उतना दोहा-चौपाई में नहीं उपलब्ध होता। 'कृष्णायन' की रचना व्रजभाषा एवं दोहा-चौपाई छन्दों में हुई है, परन्तु उसका माधुर्य अवधी में लिखित 'मानस' के छन्दों और उसके माधुर्य की कदापि समानता नहीं कर सकता। राजस्थानी के विशेष प्रिय छन्द 'टूटा', 'पाघड़ी', 'कवित्त', 'वेलियों' हैं, परन्तु यदि सूर-दास जी ने इन छन्दों को लेकर 'सूर सागर' की रचना की होती तो क्या वह कभी भी उस माधुर्य की वर्षा करने में समर्थ हो पाते जो उनके अमर महाकाव्य में सर्वत्र भरा पड़ा है।

इसी प्रकार प्रत्येक भाषा के अपने प्रिय छन्द होते हैं। उन छन्दों में उसका सौन्दर्य खूब छिटकता है। अवधी के विशेष प्रिय छन्द हैं दोहा, चौपाई, बरवै एवं छप्पय। परन्तु इनके अतिरिक्त आल्हा, सवैया, सोरटा आदि छन्दों में भी अवधी का प्रचुर साहित्य लिखा गया है। इस प्रकार उपर्युक्त छन्दों में अवधी के प्रमुख साहित्य की रचना हुई है। इन्हें हम अवधी के अपने छन्द कह सकते हैं। इनमें हम अवधी के कवियों की प्रतिभा-किरणों का आलोक देख सकते हैं। अब इनमें से प्रत्येक छन्द को पृथक्-पृथक् लेकर उसका अध्ययन करना आवश्यक होगा।

दोहा—यह अवधी का सर्वप्रिय छन्द है। दोहे में विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्रा होती हैं। पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों के आदि में जगण नहीं होना चाहिए। इसके अन्त में लघु होता है। दोहे के त्रयोदशकलात्मक विषम चरणों की बनावट दो प्रकार की है। १. जिस दोहे के आदि में (।ऽ) या (ऽ।) या (।।।) हों उसे विषमकलात्मक दोहा कहा गया है। इसकी बनावट ३ + ३ + २ + ३ + २ के रूप में

होती है। इसमें त्रिकल के पश्चात् त्रिकल, फिर द्विकल, फिर त्रिकल और फिर द्विकल होता है। चौथा समूह, जो एक त्रिकल का होता है, उसमें (।ऽ) रूप नहीं बढ़ना चाहिए। २. जिस दोहे के आदि में (।।ऽ) या (ऽऽ) या (।।।) हो तो उसे समकलात्मक दोहा कहा जायगा। इसकी बनावट ४ + ४ + ३ + २ है। अर्थात् चौकल के अनन्तर चौकल, फिर त्रिकल और द्विकल हो। पर त्रिकल रूप से न होने पाय। 'रामचरित मानस' में दोहा छन्द के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। तुलसीदास, रहीम, मलूकदास, मथुरादास, रामरूप आदि कवियों के काव्य में दोहा छन्द का प्रयोग बहुत हुआ है।

चौपाई—चौपाई के अनेक प्रकार हैं। उदाहरणार्थ, विद्युन्माला, चम्पकमाला, शुद्ध विराट्, मत्ता, पणव, अनुकला, मालती, मोहक आदि। चौपाई के दो चरणों को 'अर्द्धाली' कहते हैं। इसे 'रूप चौपाई' भी कहा गया है। इसकी १६ मात्राओं में गुरु-लघु का अथवा चौकलों का कोई क्रम नहीं होता। इसमें क्रम इतना ही रहता है कि सम के पीछे सम और विषम के पीछे विषम कल ही यत्न पूर्वक रखा जाता है। ध्यान इस बात का रखना है कि अन्त में जगण और तगण न हो, अर्थात् गुरु-लघु न हो। चौपाई में त्रिकल के पीछे समकल नहीं रखा जायगा। चौपाई और पादाकुलक की गति एक समान है। भेद केवल इतना है कि पादाकुलक के प्रत्येक चरण में चार-चार चौकल होते हैं और चौपाई में इनकी आवश्यकता नहीं होती। चौपाई छन्दों का प्रयोग 'मानस', 'मलूक रामायण' और 'कृष्णायन' में बहुत हुआ है। इन कवियों के अतिरिक्त सन्तों के काव्य में चौपाई का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अवधी-काव्य में दोहा और चौपाई ही ऐसे छन्द हैं जिनका प्रयोग कवियों ने सर्वाधिक किया है।

बरवै—बरवै में प्रथम और तृतीय पदों में १२ मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा चौथे पदों में सात मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में जगण रोचक होता है। इसे 'ध्रुव' और 'कुरंग' भी कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास की 'बरवै रामायण' और रहीम के 'बरवै नायिका भेद' में बरवै का ललित रूप व्यक्त हुआ है। सच तो यह है कि इन दो महाकवियों की लेखनी

पाकर बरवै छन्द बड़ा आकर्षक और सुचारु बन गया है। अवधी के लिए यह छन्द बहुत उपयुक्त है।

छप्पय—इस छन्द के आदि में चौबीस-चौबीस मात्राओं के रोला के चार पद रखे जाते हैं। इसके बाद उल्लाला के दो पद रखे जाते हैं। उल्लाला में कहीं-कहीं २६ और कहीं २८ मात्राएँ होती हैं। लघु-गुरु के क्रम से कविजनों की वाणी को मांगलिक बनाने के लिए इस छन्द के ७१ भेद माने गए हैं। इसके अन्त में उल्लाला २६-२६ का होता है। जिस छप्पय में उल्लाला के दो पद २६-२६ मात्राओं के होते हैं उसमें १४८ मात्राएँ होती हैं। 'मानस' में तुलसीदास जी ने छप्पय छन्दों की रचना की है। इसके अतिरिक्त नरहरि महापात्र के अवधी में लिखित छप्पय छन्द बड़े प्रसिद्ध और पठनीय हैं।

आल्हा—'भानु' कवि-कृत 'छन्द-प्रभाकर' में इसके तीन अन्य नामों का उल्लेख हुआ है, ये नाम हैं—वीर, अश्वावतारी तथा मात्रिक सवैया। इसमें १६-१५ मात्राएँ होती हैं। अन्त में (ऽ।) होता है। अवधी के प्रसिद्ध वीर-काव्य 'आल्हखण्ड' की रचना इसी छन्द में हुई है। अवधी-प्रदेश में सम्भवतः चौपाई और दोहे के बाद जनता इस छन्द से सबसे अधिक परिचित है।

सोरठा—'भानु' जी के अनुसार सोरठा की परिभाषा इस प्रकार है : **"सम तेरा विषमेश दोहा उलटे सोरठा।"** अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में १३ और प्रथम तथा तृतीय चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। दोहे का उलटा रूप ही सोरठा है। रोला और सोरठा के विषम पद एक-से होते हैं। 'रामचरित मानस' में सोरठा का सौन्दर्य दर्शनीय है।

: ४ :

अवधी के मुहावरे और लोकोक्तियाँ

भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से बल और चमत्कार का समावेश हो जाता है; साथ ही भाषा प्रभावशाली बन जाती है। मुहावरों और लोकोक्तियों में किंचित् अन्तर है। लोकोक्तियाँ स्वतः वाक्य होती हैं और मुहावरे वाक्यों के अंश के रूप में। लोकोक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता है और मुहावरों का प्रयोग वाक्यों में होता है। लोकोक्तियों को कहावतें भी कहा जाता है। कहावतें लोक-परिचित उक्तियाँ ही हैं, जो जन-सामान्य में प्रचलित हो जाती हैं। लोक-गीतों में जिस प्रकार हमें लोक-चेतना का आभास मिलता है उसी प्रकार लोकोक्तियों से लोक-प्रगति की सूचना मिलती है। लोक-चेतना का विकास पूर्व संस्कारों के आधार पर प्रगतिशील शक्तियों के सम्पर्क में होता है। इन कहावतों या लोकोक्तियों का निर्माण उस वातावरण के बीच में हुआ करता है जहाँ पुस्तकीय या शास्त्रीय विद्या की कोई नियमित परम्परा नहीं होती। फिर भी यह आश्चर्य का विषय है कि लोक-ज्ञान की वह आधार-शिला अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ और इसी कारण अधिक स्थायी होती है। लोक-गीतों से जिस प्रकार समाज के वातावरण और परिस्थितियों का ज्ञान होता है उसी प्रकार लोकोक्तियों से तत्कालीन मानव-समाज की

विचार-धारा और मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि इन लोकोक्तियों के पीछे उनके रचयिताओं की बौद्धिकता और चिन्तन की गहनता प्रतिबिम्बित हो जाती है। खेद का विषय है कि इनके मनस्वी लेखकों के नाम और व्यक्तित्व का कोई इतिहास साहित्य के क्षेत्र में उपलब्ध नहीं होता।

लोकोक्तियों के अंकुर गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में ही प्रस्फुटित हुए। कबीर, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास, दरिया, चरनदास, तुलसीदास, रहीम, बिहारी, घाघ तथा भड्डरी आदि अनेक मनस्वी कवियों द्वारा विरचित लोकोक्तियों का प्रभावशाली और चित्ताकर्षक रूप साहित्य के पृष्ठों को जहाँ तक सुशोभित कर रहा है वहाँ भारतीय हिन्दी-भाषी जनता का कण्ठाभरण बन रहा है। इन कवियों की लोकोक्तियाँ जनता में बड़ी प्रिय बन गई हैं; कारण कि उनमें संक्षिप्तता है, सारगर्भिता है, प्रभावित करने की शक्ति है।

सच तो यह है कि ये कहावतें और ये लोकोक्तियाँ विचारकों की बड़ी ही कल्याणकारिणी उक्तियाँ हैं। ये गम्भीर मनन और चिन्तन की कोष हैं। ये मानव-जाति का अक्षय भण्डार और अखण्ड उत्तराधिकार हैं। इनके अन्तर्गत अभिव्यक्त सुन्दर विचार-धारा देश, काल और स्थान की सीमा के परे है। इनमें विचारों की सत्यता तथा चिन्तन की गम्भीरता उपलब्ध होती है। यह साहित्य इस बात का प्रमाण है कि आदि काल से मानव किस प्रकार जीवन से संघर्ष करता हुआ उस जीवन को अपनाकर अनुभव की कठोर भूमि पर सन्तों के दर्शन करके उसे किस प्रकार वाणी और शब्दों में आबद्ध करता है। साहित्य के इसी क्षेत्र में पाठक या श्रोता को ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न युगों में किस प्रकार कठोर सत्यों के विषय में मानव-जाति की चिन्तन-शैली एक रही है। यह ज्ञान का ही चमत्कार है कि वह मानव को वैचारिक एकता के सूत्र में बाँधकर जीवन में मौलिक एकता का आधार उपस्थित कर देता है। इनका गम्भीर अध्ययन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि सूक्ति या लोकोक्तियों के रचयिता

और कहावतों के लेखक कितने महान् द्रष्टा, मनोवैज्ञानिक, मनीषी, साधक और विचारक होते हैं।

प्रत्येक भाषा या बोली की अपनी कहावतें और लोकोक्तियाँ होती हैं। अवधी इसका अपवाद नहीं है। अवधी भाषा की समृद्धि के साथ उसका यह साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध है। इनसे अवधी-प्रदेश के लोक-जीवन का आभास और संस्कारों का ज्ञान प्राप्त होता है। इनका प्रवेश लोक-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक अंग में है। इनमें समाज, जीवन, व्यवहार, धर्म, राजनीति आदि पर तीव्र व्यंगों का साधन किया गया है। इनकी भाषा चुस्त और संगठित है। इसीलिए प्रभावित करने की शक्ति भी इनमें अद्वितीय है। इनमें सृष्टि और मानव-जीवन के शाश्वत सत्यों की यथातथ्य अभिव्यंजना मिलती है।

अवधी की कतिपय लोकोक्तियाँ उदाहरणार्थ निम्न लिखित हैं :

१. सवति का लरिका रूखे की छाँह।
२. बुढ़िया न मरी दयू परका।
३. आँधर पीसैं कूकुर खाँय।
४. न आपु घर रूपु, न बाप घर दायजु।
५. घर के धौता लुलुहाय, बाहर के पूजा लेंय।
६. मोहरन कि लूट, कोइला पर छाप।
७. ढाक के तीन पात।
८. घर की बिटेवा बुरही।
९. मूसु मोटाई लोढ़वा मरि।
१०. नौ दिन चलै तौ अढ़ाई कोस।
११. जहि की लाठी वहि की भैंसि।
१२. खोदा पहार निकरी चुहिया।
१३. ऊँची दूकान फीकु पकवान।
१४. आँखिन के आँधिर नाँव नयन सुख।
१५. आँधरि के हाथ बटेर।

१६. सौ दिन चोर का एक दिन साहु का।
१७. जैसी करनी तैसी भरनी।
१८. बीछी कि दवाई न जानै, साँप के बिल मा हाथ डारै।
१९. जस नागनाथ तस साँपनाथ।
२०. निबरे केरि जोइया सबकी सरहज।

स्थानाभाव से अधिक उदाहरणों का उल्लेख सम्भव न होगा। परन्तु इन कतिपय उदाहरणों से अवधी की लोकोक्तियों में विचार-समृद्धि और व्यंगों की प्रचुरता स्पष्ट हो जायगी। अवधी की कहावतों आदि में व्यंग और स्पष्टवादिता की प्रधानता रहती है **'निबरे केरि जोइयाँ सबकी सरहज'** में निर्बल व्यक्ति की वास्तविक स्थिति तथा विवशता का चित्रण करते हुए शक्तिशालियों के अत्याचार पर व्यंगाघात किया गया है। इसी प्रकार उदाहरण पाँच, छ, नौ, दस, बारह, सत्रह, अठारह, उन्नीस आदि लोकोक्तियों में सत्य और तथ्य को कौशल के साथ व्यक्त किया गया है।

: ५ :

अवधी के कतिपय विचित्र प्रयोग

प्रत्येक भाषा या बोली में भावों की अभिव्यंजना की ऐसी शैली प्रचलित होती है जो दूसरी भाषा या बोली में अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। यह भाषा की एक बड़ी भारी विशेषता और विचित्रता मानी जाती है। जिस भाषा में इस प्रकार के जितने ही अधिक प्रयोग या अभिव्यंजना-शैली मिलती है उतना ही उसे जन-जीवन के निकट समझना चाहिए। भाषा के माध्यम से जनता अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयोग (Experiments) किया करती है। ऐसे प्रयोगों और अभिव्यक्तियों का इतिहास बड़ा प्राचीन हुआ करता है। जिस भाषा में ये प्रयोग जितने अधिक होते हैं वह उतनी ही परिमार्जित और जनप्रिय समझी जाती है। मनोवैज्ञानिक के लिए ये प्रयोग कम रोचक नहीं हैं। इनके आधार पर उसका प्रयोग करने वाली जनता के मस्तिष्क, चिन्तन की गहनता, विचारशीलता और भाषा की शक्तिमता का ज्ञान हुआ करता है। इन्हें हम सरलता के साथ लाक्षणिक प्रयोग कह सकते हैं। ये प्रयोग भाषा की समृद्धि के द्योतक हैं।

अवधी के ऐसे प्रयोगों से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :

१. मरिहौं तलबला तौनु *बिरहा* हस गइहै।

२. मरे ब्यौंतन के *सुखग्घी* खिचवा देब।

३. अइसा लाठी मार्यों कि मूँडु फूट *हसि बिगिस गा*।

४. यहु लरिका दिन भरि *बँबावा* करत है।

५. दिन भरि *डंडा-गोपाली* करबु ठीक नहीं है। कुछु लिखौ-पढ़ौ।

६. वहु तौ *पढ़िना हस* परे सोय रहा है।

७. का सब जाने *कुकुरहाई* कीन्हेव हौ।

८. उइ *तोप* थ्वारौं आही जौनु दगि जइहैं।

९. उइ तौ *मुहमुरझुए* बैठि रहै।

१०. सब-के-सब *पनारा क किरवा* हसि बिलबिलाति है।

इन उपर्युक्त वाक्यों में रेखांकित अंशों पर विशेष ध्यान दीजिए। ये सभी ऐसे प्रयोग और भावाभिव्यंजनाएँ हैं जो अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। इसी प्रकार के सैकड़ों प्रयोग अवधी भाषा में निरन्तर होते जा रहे हैं।

अब इनमें से एक-एक को लेकर सौन्दर्य-परीक्षण अपेक्षित है। सभी व्यक्ति जानते हैं कि **बिरहा** अवधी का एक विशेष गीत है। इसके गायन के समय अवधी-स्वर में आरोह और अवरोह का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। 'तलबला' का अर्थ होता है चाँटा, थप्पड़। यहाँ पर पूरे वाक्य का अर्थ यह है कि ऐसा चाँटा मारूँगा कि बड़ी देर तक रोते रहोगे। 'बिरहा' गीत भी काफ़ी समय तक गाया जाता है। उसी प्रकार मारने-पीटने से जो शारीरिक कष्ट होते हैं उसके फलस्वरूप व्यक्ति काफी समय तक रोता है।

दूसरे वाक्य में **सुखग्घी** एक खेल है, जिसमें शतरञ्ज की-सी लाइनें खींची जाती हैं; फिर गोटों से खेला जाता है। यहाँ पर उन्हीं लाइनों के खींचने या अंकित करने का भाव आया है। कहा गया है कि इतने बेंत मारूँगा कि देह-भर निशान-ही-निशान अंकित हो जायँगे।

तीसरे वाक्य में **फूट** शब्द पर ध्यान दें। फूट एक फल है, जो पक जाने पर चारों ओर से फट जाता है। इस वाक्य में कहा गया है, लाठी से ऐसा प्रहार किया गया कि सिर पकी हुई फूट के समान चारों ओर से फट गया।

यहाँ लाक्षणिक प्रयोग हुआ है।

अब चौथा वाक्य देखें। यहाँ '**बँबावा**' शब्द आया है। सभी जानते हैं कि भैंस के बच्चे पडवा का चिल्लाना 'बँबाना' कहा जाता है। यहाँ बच्चे के उस अप्रिय रुदन को बँबाना कहकर उसके प्रति घृणा व्यक्त की गई है।

डंडा गोपाली का अर्थ होता है खेलना-कूदना। बाल-सखाओं के साथ श्रीकृष्ण का गौ चराते समय डण्डा लेकर खेलना-कूदना इस प्रयोग की प्रेरणा का आधार हो सकता है।

छठे वाक्य में **पढ़िना** एक प्रकार की मछली होती है, जो अपने बृहदाकार के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पैर फैलाकर लम्बायमान हो जाने के भाव की **पढ़िना** से तुलना की गई है।

कुकुरहाई का अर्थ होता है अनेक कुत्तों का एक साथ भौंकना। अनेक व्यक्तियों का एक साथ चिल्लाना या वाद-विवाद करना भी एक प्रकार से कुकुरहाई मानी गई है।

तोप ध्वंसात्मक अस्त्र है। यहाँ पर कहने का अभिप्राय है कि वह व्यक्ति 'तोप' के समान ध्वंसात्मक नहीं है कि वह दगते ही हमें मार डालेगा।

मुह मुरझाना का अर्थ होता है उदास होना। वस्तुतः सभी जानते हैं कि चेहरा उदास होता है और पेड़ मुरझा जाता है। परन्तु यहाँ लाक्षणिक प्रयोग किया गया है।

अन्तिम वाक्य में **पनारा क किरवा** का अर्थ नाबदान का कीड़ा है जो हेय और अपदस्थ माना जाता है। बिलबिलाति का अभिप्राय है व्याकुल होना।

: ६ :

अवधी की अभिव्यञ्जना-शक्ति

प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषताएँ, सामर्थ्य और सीमाएँ होती हैं। व्रजभाषा में कोमल भावनाओं की अभिव्यञ्जना की अद्वितीय शक्ति है। माधुर्य एवं लोच तो जितना इस भाषा या बोली में है वह हिन्दी की किसी भी बोली में दुर्लभ है। भाव एवं व्यवहार के क्षेत्र में यह मधुरता का अच्छा प्रतिनिधित्व कर सकती है। परन्तु व्यापक भावनाओं और विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति में अवधी अधिक सामर्थ्य-सम्पन्न है। 'रामचरित मानस' में क्रोध, शोक, मोह, प्रेम, दैन्य, उत्साह आदि भावों की अभिव्यञ्जना अवधी में बड़ी सुन्दरता पूर्वक हुई है। पुष्प-वाटिका-वर्णन और धनुष-भंग-प्रकरण में गोस्वामी जी ने कोमल भावनाओं का चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अवधी में व्रजभाषा का-सा माधुर्य तो नहीं है, परन्तु उसकी कोमलता और माधुर्य उसके ग्राम्य-गीतों में भरा पड़ा है।

व्यावहारिक भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए अवधी बहुत प्रसिद्ध है। व्यावहारिक भावों का चित्रण 'मानस', 'पद्मावत' और रहीम के काव्य में खूब हुआ है। अवधी के अन्तर्गत विविध ऋतुओं के प्राकृतिक दृश्यों और छटाओं की पृष्ठभूमि में मानव-समाज और जन-जीवन की व्यापक और गम्भीर अभिव्यक्ति हुई है। उत्सव, त्यौहार, ऋतु, समारोह आदि की

विशिष्ट भाव-धारा विस्तृत रूप से अवधी की भाषा-भूमि में प्रवाहित हुई है। इस बोली के ग्राम-गीतों में जन-जीवन की विविध दशाओं, हर्ष-विषाद, आह्लाद, ग्लानि, आनन्द और दुःखादि का स्वाभाविक और सजीव चित्रण मिलता है। इन काव्यों में अनुभूति और सचाई के साथ-ही-साथ प्रभावित करने की अपूर्व शक्ति उपलब्ध होती है। इसी कारण ये ग्राम-गीत हमारे अन्तस् को आन्दोलित और उद्वेलित कर देते हैं। अवधी के गीतों में करुण और वीर रसों की अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता है। अवधी का आल्ह-खण्ड वीर रस के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। यह चौपालों में गाया जाने वाला गीत है। आल्हा के छन्द, साथ का बाजा, ढोलक और गाने का स्वर सभी बड़े रोचक और निराले हैं। ढोलक के साथ मँजीरा भी बजाया जाता है। अवध के देहातों में जितना आल्हा जनप्रिय है उतने 'मानस', भागवत, और पुराण भी नहीं। आल्हा में ओज और वीरता भरी पड़ी है। उदाहरणार्थ उसकी कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है :

जैसे भेडहा भेडन पैठे, जैसे सिंह बिडारै गाय।
तैसेइ लाखनि दल में पैठे, रन में कठिन करै तरवारि॥
पान तमोली जैसे कतरै, जैसे खेती लुनै किसान।
सुआ सोपारी जैसे कतरै, त्यों दल काटि करो खरिहान॥
डेढ़ पहर भर भली सिरोही, नदिया बही रकत की धार।
देवि शारदा दहिने हुइ गइ, मुर्चा डटो पिथौरा क्यार॥
अकिले लाखनि की डपटिन में, कोई कुँवर न आडो पाँव।
भगे सिपाही दिल्ली वाले, अपने डारि-डारि हथियार॥
हियाँ की बातैं हियनै छाड़ौ, अब आगे का सुनौ हवाल।
घोड़ा प्यादन रूपना बारी, नदिया बितवै पहुँचौ जाय॥
पानी लाल देखि नदिया को, तब ऊँचे चढ़ि देखन लाय।
बिजुरी चमकै ज्यों बादल में, तस रन चमकि रही तरवारि॥
मनहिं हमारे अस आवत है, मारे गए कनौजी राय।
विकट लड़ाई भइ नदी पर, नदिया बही रकत की धार॥

हुकम न मानौ तुम दोनों ने, हमरें जीवन को धिक्कार ।
अब हम जानी अपने मन माँ, दोनों पुत्र कुपूत हमार ॥

'आल्ह-खण्ड' में वीर और शृङ्गार-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

अवधी का 'सावन-गीत' बड़ा प्रसिद्ध है । इस गीत में कवियों ने हृदय के वास्तविक भावों और सच्ची अनुभूतियों का चित्रण किया है । निम्न-लिखित पद्य में करुण भावों की अच्छी अभिव्यञ्जना हुई है । इस उद्धरण में यह व्यक्त किया गया है कि विदा के अवसर पर घर के लोग पुत्री को क्या-क्या भेंटकर रहे हैं और उसे कौन कितना प्रेम करता है । इन पंक्तियों में भावाभिव्यक्ति-सौन्दर्य, संकेत और भाव-गाम्भीर्य विशेष ध्यान देने योग्य है :

सावन सेंदुरा माँग भरी वीरन, चुँदरी रँगायो अनमोल ।
माया ने दीन्ह्यो नौ मन सोनवाँ, कि ददुली ने लहर पटोर ॥
भैया ते दीन्ह्यो चढ़न को घोड़वा, भौजी मोतिन को हार ।
माया के रोये ते नदिया बहत है, ददुली के रोये सागर पार ॥
भैया के रोये ते पटुका भिंजत है, भौजी के दुइ-दुइ आस ।
सावन सेंदुरा माँग भरी वीरन, चुँदरी रँगायो अनमोल ॥

अवधी में एक-से-एक सुन्दर ग्राम-गीत उपलब्ध होते हैं जो अपने छन्द, भाव और व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध होने के साथ-ही-साथ माधुर्य और कोमल भावनाओं से ओत-प्रोत हैं । इन छन्दों में तत्कालीन संस्कृति के सुन्दर चित्र उपलब्ध होते हैं । इन्हीं ग्राम-गीतों में 'सोहर' छन्द विशेष उल्लेख-नीय है । इसमें कहानी की रोचकता तो है ही, साथ ही काव्य की सरसता भी है । संक्षिप्त होते हुए भी भावों में व्यापकता और विस्तृति है । सरलता और तीखे व्यंग्यों का इनमें विचित्र समन्वय है । इनमें प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति है । उदाहरणार्थ यहाँ एक गीत उद्धृत किया जाता है :

हनि-हनि काटिन खम्भा और करतुलिया बाँस ।
जाँइ हिंडोलवा गडाइन गंगा जमुन बालू रेत ।
एक पर राधा रुकमिनी एक पर झूलें कृष्ण अकेल ॥
पान खाइन पिय डारिन पर गइ चदरिया में दाग ।

चलहु न सखिया सहेलरि चिरवा धोवन हम जायँ ॥
चीर धोइ भुइयाँ डारिन लै गये कृष्ण उठाय ।
कृष्ण दे डालो चीर हम जल माँझ उघारि ॥
ह्वै जाबै जल माछरि जलवा डराइ हम लेब ।
जो तू जलबा डरैबो तो हम बन कोइल होब ॥
तो तुम होबो बन कोइल लसवा लगाइ हम देब ।
जो तू लसवा लगैबो तो हम बन घुँघची होब ॥
जो तुम होबो बन घुँघची अगिया लगाय हम देब।
जब तुम अगिया लगैबो आधा जरब आधा लाल ॥

इसी 'सोहर' का एक और उदाहरण पठनीय होगा। इस छन्द में असहाय दीन-हीन व्यक्तियों पर किये जाने वाले शक्ति-सम्पन्न अधिकारियों के अत्याचार और अनाचार के सम्बन्ध में लेखक ने व्यंग्य किया है। उदाहरण से स्पष्ट है कि व्यंग्य कितना तीव्र और मार्मिक है :

छायक पेड छिउलिया, तौ पतवन गहवर ।
तेहितर ठाढ़ी हिरनियाँ, तौ मन अति अनमन ॥
चरतै चरत हिरनवाँ तौ हिरनी ते पूँछइ ।
की तोर चरहा झुरान कि पानी मुरझिउँ ॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिनु मुरझिउँ ।
आज राजा जी के छट्ठी तुम्हहिं मारि डरिहैं ॥
मचियै बैठि कौसल्या रानी हिरनी अरज करइ ।
रानी मसवा तौ सिझइ रसोइयाँ, खलरिया हमें देतिउ ॥
पेडवा मा टगतिउँ खलरिया तौ फेरि-फेरि देखितिउँ ।
रानी देखि-देखि मन समुझाइत जानित हिरना जीतइ ॥
जाउ हिरनी घर अपने खलरिया नाहीं देबइ ।
हिरनी खलरी क खजरी मढ़इबे राम मोर खेलिहै ॥
जब जब बाजै खँजरिया सबद सुनि अनकइ ।
हिरनी ठाढ़ि ढकुलवा के नीचै हिरन क बिसरइ ॥

अवधी के गीतों में आकर्षण और मनोरंजन की अच्छी शक्ति है। पुरुषों के गीतों में अधिकतर नीति और वीरता, स्त्रियों के प्रति आकर्षण, त्याग, वैराग के भाव हैं। इनमें बौद्धिक पक्ष की भी प्रधानता है। परन्तु स्त्रियों के गीतों में शृंगार और करुण रस प्रधानतया व्यक्त हुए हैं। **"पुरुषों के गीतों से ऐसा लगता है कि पुरुष भौंरों की तरह दौड़-दौड़कर सब रसों का स्वाद लेना चाहता है और स्त्री के गीतों से यह प्रकट होता है कि वह उसे एक केन्द्र पर बाँधे रखना चाहती है।"**[1]

'बरवै' अवधी का बड़ा प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण छन्द है। होली में परिक्रमा करते हुए इसे गाया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास और रहीम की सुघर लेखनी का माध्यम पाकर यह छन्द अमर बन गया है। इस छन्द में भाव, अनुभूति और गति अवधी के लघुतापरक शब्दों के साथ बड़ी सुन्दरता-पूर्वक परिचालित होती है। सौन्दर्य और भावों की अभिव्यञ्जना के लिए अवधी का यह छन्द विशेष पसन्द किया जाता है। उदाहरण के लिए यहाँ कतिपय छन्द उद्धृत किये जाते हैं :

चम्पक हरवा अंग मिलि, अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुम्हिलाय॥
अवजीवन कै है कपि, आस न कोय।
कनगुरिया कै मुँदरी, कँगना होय॥
डहकु न है उजियरिया, निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागै, मोहि बिनु राम॥[2]

रहीम के बरवै का उदाहरण निम्न लिखित है :

मोर होत कोइलिया, बढ़वति ताप।
धरी एक मरि अलिया, रहु चुपचाप॥

रहीम के बरवै छन्दों में प्रकृति-चित्रण, भाव का व्यंग्य-संकेत, अनुभूति का चित्रण और भाषा का माधुर्य पठनीय है।

---

१. रामनरेश त्रिपाठी, 'हमारा ग्राम्य साहित्य', पृष्ठ ३३।

२. तुलसीदास।

: ७ :

अवधी में पारिवारिक जीवन का चित्रण

अवधी का लोक-साहित्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से बड़ा समृद्ध और शक्ति-सपन्न है। इसमें अवध-प्रदेश के मानव-समाज के हर्ष-विषाद, दुःख-सुख, मधुर एवं कटु अनुभूतियाँ, विश्वास, धारणाएँ, मान्यताएँ, आशाएँ और आकांक्षाएँ बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं। इन्हीं भावनाओं के अन्तर्गत मनुष्य का दाम्पत्य-जीवन भी आ जाता है, अवधी के लोक-गीतों में जिसका बड़े व्यापक रूप से चित्रण हुआ है। दाम्पत्य-जीवन के चित्रण में भी पुरुषों की भावनाओं की अपेक्षा नारी की भावनाओं का अधिक चित्रण हुआ है। नारी-भावनाओं में मातृत्व की भावना प्रायः सभी लोक-गीतों में बड़ी प्राचीन है। नारी-भावना के इस रूप के पश्चात् फिर हमें दाम्पत्य-जीवन के ही चित्र अधिक उपलब्ध होते हैं। दाम्पत्य-भावना में भी पति-पत्नी के संयोग-वियोग, मिलन-उत्कण्ठा, उपालम्भ की तन्मयता एवं निराशा आदि का वर्णन हुआ है।

दाम्पत्य-जीवन में संयोगावस्था तन्मयता की दशा होती है। इस तन्मयता में भावाभिव्यञ्जना या अनुभूति-प्रकाशन के लिए अवसर नहीं होता। चिर विरह के अनन्तर संयोग में पुनः बाधा असह्य हो जाती है। यह भाव बड़ी सफलता और मार्मिकता के साथ निम्न लिखित पंक्तियों में

अभिव्यक्त हुआ है :

जो मैं जनतिउँ ये लवंगरि एतनी मँहकबिउ ।
लवंगरि रँगतिउँ छयलवा क पाग सहरवा य गमकत ॥
अरे-अरे कारी बदरिया तुहँइ मोरि बादरि ।
बादरि ! जाइ बरसउ वहि देस जहाँ पिय छाये ॥
बाय बहइ पुरवइया त पछुआँ झकोरइ ।
बहिनि दिहेउ केवड़िया ओड़काइ सोवउँ सुख नींदरि ॥
कि तुइ कुकुरा बिलरिया सहर सब सोवइ ।
कि तुइ ससुर पहरुआ किवड़िया भड़कावइ ॥
ना हम कुकुर बिलरिया न ससुर पहरिया ।
धना हम आहि तो हरा नयकवा बदरिया बोलायेसि ।
आधी रात बीति गइ बतियाँ नियाईं राति चितियाँ ॥
बारह बरस का सनेह जोरत मुर्गा बोलइ ।
तोरवेउँ मैं मुरगा का ठोर गटइया मरोरवेउँ ॥
मुरगा काहे किहेउ भिनुसार त पियेह बलायउ ।
काहे कये रानी तोरबिउ ठोर गटइया मरोरबिउ ।
रानी होइगै धरमवाँ का जून भोर होत बोलेउ ॥

अवधी के लोक-गीतों में वियोग शृंगार की सुन्दर छटा अभिव्यक्त हुई है । प्रियतम के विदेश-गमन के कारण नायिका विरह-कातर है । प्राकृतिक दृश्य और ऋतु उसके विरह को और भी अधिक बढ़ा देते हैं । भाँति-भाँति से वह अपने विरह और तज्जन्य कष्टों का विवरण पशु-पक्षियों द्वारा प्रेषित करने का प्रयत्न करती है । कभी वह पपीहे की चिरौरी करती है, कभी वह कौओं की मिन्नत करती है; केवल इसलिए कि वे उसके सन्देश को प्रिअतम तक पहुँचा देंगे । परन्तु दुःख की क्या बात, यदि कोई साथ दे दे । अखिल विश्व उससे असहयोग करता हुआ दिखाई देता है और असहयोग ही नहीं वरन् वह दुःखदायी प्रतीत होता है । कोयल की कूक, राकेश की चन्द्रिका, मलय का अनिल सब उसे बार-बार प्रियतम की याद दिलाते हैं ।

धीरे-धीरे सावन भी शत्रु के समान चढ़ आया। ऐसी दशा में वह मन में कल्पना करती है कि यदि प्रियतम आ जाय तो :

सावन घन गरजै।
कीधर की घटा ओनई, कीधर बरसै गम्भीर।
हमरा ललन परदेसिया, भीजत होइहै कौने देस॥
सावन घन गरजै।
खसकै बँगला छ्वउतिउँ, चौमुख रखतिउ दुहार।
हरिलैकै चढ़तिउँ अटरिया, झोंकवन अवति बयार॥
सावन घन गरजै।
अतलस लेहँगा पहिरतिउँ, चुनरी बरनिन जाय।
झमकिकै चढ़तिउँ अटरिया, चौमुख दिबला बराय॥
सावन घन गरजै।

इन पंक्तियों में कितनी सात्विक अभिलाषाओं का चित्रण हुआ है। दाम्पत्य-जीवन का यही पवित्र स्वरूप अवधी में प्रायः सर्वत्र दृष्टिगत होता है। अवधी में जिस दाम्पत्य-जीवन की अभिव्यक्ति हुई है वह कर्तव्यपूर्ण और धर्माचार से सयुक्त है। नायिका धर्माचार की नौका में बैठकर केवल पति के द्वारा संचालित गृहस्थी या दाम्पत्य-जीवन-रूपी नौका में अथाह संसार-सागर को पार करने की आकांक्षिणी प्रतीत होती है। इसी भाव को प्रकट करने वाला एक छन्द पढ़िये :

धीरे बहो नदिया धीरे बहो।
मोरा पिय उतरइ रे पार॥
काहेकी तोरी नैया रे, काहे की पतवार।
कहाँ तोरा नइया खेवैया रे, के धन उतरहि पार॥
धरमै कै मोरि नइया रे, सत्त के लागी पतवार।
सैंया मोरी नैया खेवैया, हम धन उतरिबे पार॥
धीरे बहो नदिया धीरे बहो।
मोरा पिय उतरइ रे पार॥

अवधी में इसी प्रकार दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन के उज्ज्वल पक्ष को हमारे कवियों ने भाँति-भाँति से व्यक्त किया है। यह जीवन आज की वर्तमान सभ्य दुनिया के लिए स्वप्न भले ही प्रतीत हो, पर हमारा ग्रामीण-समाज आज भी अपनी इस विशेषता को सुरक्षित बनाये हुए है।

: ८ :

अवधी का लोक-गीत-साहित्य

वर्तमान काल में अवधी की जनप्रियता के साथ उसका वैभव एवं साहित्य विभिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित होता जा रहा है। आज अवधी का प्रसार नाटक, लोक-कथा तथा लोक-काव्य के रूप में बड़े समारोह के साथ हो रहा है। लखनऊ के ऑल इण्डिया रेडियो से नाटकों, एकांकी-नाटकों, लोक-कथाओं और लोक-काव्य का निरन्तर प्रसार होता रहता है। इसी कारण जनता की अभिरुचि और लेखकों की शैली में सर्वथा परिष्कार होता जा रहा हं। आज का लोक-साहित्य या लोक-काव्य समाज, देश और काल की विभिन्न समस्याओं को लेकर जनता के सम्मुख उपस्थित हो रहा है।

अवधी के लोक-गीतों का इतिहास बड़ा पुराना है। आज हमारे पास अवधी के लोक-गीतों का बड़ा भारी भण्डार है, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि न तो उनके लेखकों का हमें ज्ञान है, न उनके रचना-काल का कोई पता लगता है। लोक-गीतों का यह भण्डार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के पास क्रमशः चला आ रहा है। लोक-गीतों की रचना प्रमुख रूप से निम्न-लिखित शीर्षकों में हुई है :

१. नहछू	३. राह के गीत
२. चक्की के गीत	४. होली

५. विवाह के गीत
६. चैती
७. धोबी के गीत
८. वसन्त ऋतु के गीत
९. वर्षा ऋतु के गीत
१०. कोल्हू के गीत
११. अन्नप्राशन के गीत
१२. जनेऊ के गीत
१३. कन्या-दान के गीत
१४. कहरवा
१५. सोहर

अब यहाँ इन प्रसंगों में से कतिपय लोक-गीत उद्धृत करना असंगत न होगा :

१. चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि देई आजी दैवा मनावै।
दैवा आजु बदरिया न होयब आजु मोरे नतिया—
कै जनेव ॥१॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि दीदी—देई दैवा मनावै।
दैवा आजु बदरिया न होयब आजु मोरे पुतवा—
कै जनेव ॥२॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि देई काकी दैवा मनावै।
दैवा आजु बदरिया न होयब आजु मोर पुतवा—
कै जनेव ॥३॥

२. कारिक पियरी बदरिया झझाक देव बरसहु।
बदरी जाइ बरसइ उहि देस जहाँ पिया कोउ करे॥
भीजे आखर-बाखर तम्बुआ कनतिया।
अरे मितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवै॥
बरहे बरसि पर लौटे बरही तरे उतरे।
माया लैके उठी चनना पिढ़ैय्या बहिनि जगेड़वा॥

मोर पिया पनियउँ पीयेनि हाथ-मुँह धोयसि।
माई, देखउँ कुल परिवार धना को न देखऊ॥
बेटा तोरी धन अगियाँ कै पातरि मुख कै सुन्दरि।
बहु वरि गोडे मूडे तानेनि पिछोरा सोवै धौराहरि॥

वर्तमान अवधी के लोक-गीत-लेखकों में श्री वंशीधर शुक्ल, श्री रमई काका, श्री राधावल्लभ, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा, श्री बलदेवप्रसाद, श्री रामजीदास आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी लेखकों में श्री राधावल्लभ की प्रतिभा का विकास इस क्षेत्र में अधिक हो रहा है। उनके कतिपय लोक-गीत यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

मल्हार

१. भादौ आयो अधिक सुहावना जी,
एजी ! कोई गावै राग मल्हार।
रिमझिम-रिमझिम मेहरा बरसता जी !
एजी कोई मुरली करत पुकार।
अमवा की डारी झूला डालि के जी
एजी कोई झूला राजकुँवार।

२. सावन आयो मैना मेरो रस भरो जी
एजी कोई गावै गीत मल्हार।
दखनी चीर मैना ओढ़ कै जी,
एजी कोई झूले चम्बे बाग। सावन....
सात सहेली लाऊँ साथ भेजी,
एजी कोई झूलै चमन बहार। सावन....
कपड़े तो मैना मैना मेरी प्रेम सँजी।
एजी कोई सावन की बहार। सावन....

अब श्रीमती सिनहा का 'निरवाही' का एक गीत देखिये :

झमा झम बरसौ काले मेघा
खेतन माँ बरसौ, तालन का भरि दियौ।

माटी का छुइ के सोने कि करि दियौ।
अइस रस बरसौ काले मेघा॥
धरती हरियावै महिमा हम गावै ।
पातिन-पातिन पर आसा फलियावै॥
अइस रस बरसौ काले मेघा।
झमा झम बरसौ काले मेघा॥
अमृत ढरकाओ धरती अधवावो।
हरियर बिरवन पर सोना बरसाओ॥
अइस रस बरसौ काले मेघा।
फसिलै करवावै बखरैं भरवावै॥
बारे के बलम न परदेसै जावै॥

श्री बलदेवप्रसाद का एक 'निरवाही' गीत इस प्रकार है :

आये सावन मास सुहावन हो राम
मोरे अँगना बुँदिया परन लागी हो।
पिया पापी पपीहरा बोलन लागे हो॥
सखी चमकन लग्गी बिजुरिया हो राम।
सखी मोरा जियरवा डरन लागे हो॥ पिया०
देखो सन-सन चललो बयरिया हो राम।
बन-बागन मोरवा बोलन लागे हो॥ पिया०
नाही उन बिन भावै अटरिया हो राम।
मोरी अँखियनि अँसुआ झरन लागे हो॥ पिया०

: ९ :

अवधी का संक्षिप्त व्याकरण

संज्ञा

अवधी में शब्दों के सामान्यतया तीन रूप होते हैं। उदाहरणार्थ, 'घोड़ा', 'घोड़वा' और 'घोड़ौना'; 'हाथी', 'हथवा', 'हथ्थौना'; 'साँड', 'सँडवा', 'सडौना'; 'पेड़', 'पेड़वा', 'पेड़ौना'। संज्ञाओं के साथ सम्बद्ध होने वाली विभक्तियाँ निम्न लिखित हैं—

१. कर्ता	ए
२. कर्म	के, काँ, कहँ
३. करण	से, सन्, सौं
४. सम्प्रदान	के, काँ, कहँ
५. अपादान	से, तें, सेती, हुँत
६. सम्बन्ध	कर, केर, कै
७. अधिकरण	में, माँ, महँ, पर

विशेषण

अवधी में विशेषण लिङ्ग विशेष के आधार पर समयानुसार बदलता रहता है। उदाहरणार्थ—आपन-आपनि, हमार-हमारि, ओहिका-ओहिकी, तेहिका-तेहिकी, सबकर-सबकी आदि। इसका ध्यान बोल-चाल और साहित्य

दोनों में समान रूप से रखा जाता है।

सर्वनाम

अवधी में प्रयुक्त सर्वनाम के विभिन्न रूप निम्न लिखित हैं—

सर्वनाम	एक वचन	बहु वचन
मैं—	मैं, मो, मोर	हम, हम हमरे, हमार हमरे
तू—	तैं, तो, तोर	तुम तू, तुम तुम्हरे, तुम्हार तुम्हरे तोहार तोहरे
आप (स्व)—	आप, आप, आपकर आपकेर	आप, आप, आपकर
आप (पर)—	आप, आपु, आपन	आप, आप, आपन
यह—	इ, ए, एह, उहि, यहु—एकर, एहिकर	इन, ए, इन—इन, इनकर इनकेर
वह—	ऊ, वै—ओ, ओह, ओहि-ओकर—ओहिकर	उन, ओन—ओन उन—ओनकर, ओनकेर
जो—	जो, जौन जे-जे, जेहि, जेकर जेहिकर	जे—जिन-जिनकर, जिनकेर
सो—	सो, से, तौन-ते, तेहि-तेकर-तेहिकर	ते—तिन-तिनकर, तिनकेर

क्रियाएँ

अवधी में क्रियाओं के विभिन्न रूप निम्न लिखित होते हैं—

अकर्मक क्रिया—वर्तमान काल—'मैं हूँ'

पुरुष	एक वचन पु०	एक वचन स्त्री०	बहु वचन पु०	बहु वचन स्त्री०
उ० पु०	है, अहौ	हइउँ, अहिउँ	हइ, अही	हइन, अहिन
म० पु०	हए, अहिस अहसि	हइस, अहिस	हौ, अहौ हहेव, अहौ, अह, अहे	हइव, अहिव

अ० पु०	अहै है, आय	अहै, है	अहैं, हैं	अहैं

भूतकाल—'मैं था'

पुरुष	एक वचन		बहु वचन	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
उ० पु०	रह्यों	रहिउँ	रहे	रहे, रहिन
म० पु०	रहे, रहसि	रहे, रहिसि	रह्यो	रहिउ
अ० पु०	रही	रही	रहेन, रहैं	रही, रहिन

सकर्मक मुख्य क्रियाएँ

क्रियार्थक संज्ञा	देखब, सुनब, रहब
वर्तमान कृदन्त	देखत देखित, सुनत सुनित, रहत रहित
भूत कृदन्त	देखा, सुना, रहा
भविष्य कृदन्त	देखब, सुनब, रहब
सम्भाव्यार्थ कृदन्त	देखत देखित, सुनत सुनित, रहत रहित
वर्तमान सम्भाव्यार्थ	मैं देखौ, मैं सुनौ, मैं रहौ

अब यहाँ सुनना क्रिया के विविध रूप दिये जाते हैं।

पुरुष	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	सुनौ	सुनी
म० पु०	सुनु, सुनिस	सुनौ
अ० पु०	सुनै	सुनै

भविष्य

पुरुष	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	सुनिबौ, सुनिहौ	सुनब, सुनिहैं
म० पु०	सुनबै, सुनिहै	सुनबौ, सुनिहौ
अ० पु०	सुनि, सुने, सुनिहैं	सुनिहैं

भूत

पुरुष	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	सुन्यौं, सुनिउँ	सुना, सुनिन, सुना, सुनिन
म० पु०	सुने, सुनिस, सुनेसि, सुनिसि सुनी	सुनेन, सुन्यो, सुनेन, सुनी, सुनेउ
अ० पु०	सुनेस, सुनिस, सुन, सुनिसि	सुनेस, सुनिन, सुनी, सुनिनि

भूत संकेतार्थ

पुरुष	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	सुनत्यौं, सुनतिउँ	सुनित
म० पु०	सुनते, सुनतिस	सुनतेहु, सुनत्यो, सुनतिउ
अ० पु०	सुनत, सुनति	सुनतेन, सुनतिन

वर्तमान पूर्ण

पुरुष	एक वचन	बहु वचन
उ० पु०	सुन्यौं है, सुनिउहौं	सुना है, सुनेन है, सुनिन है, सुने है, सुना है
म० पु०	सुनेस है, सुनिस है, सुनिसि है	सुन्योहै, सुनिउ हैं
अ० पु०	सुनेस है, सुनिसहै, सुनि है, सुनिसि है	सुनेन है, सुनिन है, सुना है, सुनिन है